परमात्मा की देशना के
रंग-बिरंगे उपवन से चुने.. ...
कुछ फूलों का मनोरम गुलदस्ता
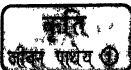
आशीर्वाद

पू. महासती श्री केसर देवीजी
पू. महासती श्री कौशल्या देवीजी

समर्पण

पू. महासती विमला श्री जी
पू. महासती उर्मिला श्री जी

प्रस्तुति

साध्वी युगल निधि कृपा

प्रस्तावना

डा. राजमल बोरा

ISBN

81-900823-2-9

संस्करण : वर्ष : प्रतियाँ

प्रथम 1999 3000
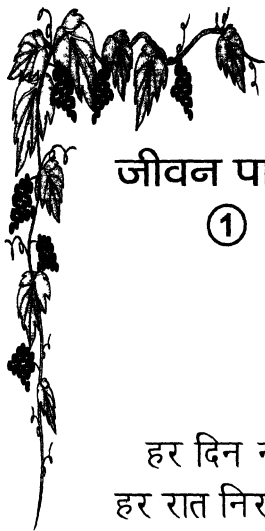
मूल्य 50/-

जीवन पाथेय

1

हर दिन नया है
हर रात निराली है
यदि 'जीवन पाथेय'
आपके हाथ में है
तो हर दिन दिवाली है...

MAITRI CHARITABLE FOUNDATION

NO 2 MURUGAPPAN STREET, SOWCARPET,
CHENNAI- 600079
TEL 5227395, 5325787, 5321764

Mr. DEEPAK DESAI JAIN
F-102, Ashok Vihar
Phase I, Delhi- 110052
Tel 7444811, 7413088

Mr. RAJESH SHINGHVI JAIN
No 62, Bhawani Peth
Pune- 411042
Tel 655570, 653477

Mr. NARENDER JAIN
886,L Block, Kedar Bldg ,
Sabzi Mandi, Ghantaghar
Delhi- 110007
Tel 3959182, 2932906

Mr. VEERENDRA SURANA JAIN
Aadinath Exports,
34, Ganesh Bhavan
80, Ramwadi, Kalbadevi,
Mumbai Tel

Mr. MANMAL DARLA JAIN
Darla Sales & Agencies
1516-A, Shivaram Pet,
Mysore-1
Tel 31473, 24170

Mr. JAYESH MEHTA JAIN
Foto Circle
No 2, S S K Sangha Bldg
Ballepet, Bangalore- 560010
Tel 3306829,3384074

Mr. L.D. MEHTA JAIN
Sector 3-B, Plot No 395/2
Gandhinagar- 382006
Tel 29576

Mr KUNDAN KANKARIYA JAIN
Jeevan Dhara
Burudgaon Road
Ahmednagar (M S)
Tel 25359, 25483

हमारी पुस्तकें

- जीवन बोध
- **Solutions to Your Sunsign**
- **Bhaktamar Stotra**
- आपकी राशी आपका समाधान
- जीवन पाथेय प्रथम भाग
- जीवन पाथेय द्वितीय भाग

लघु पुस्तकें

- गुरु प्रसादी
- दस लक्षण
- धर्म संदेश
- ध्यान साधना
- दैनिक चिंतन

संपर्क सूत्र

MAITRI CHARITABLE FOUNDATION
NO. 2. MURUGAPPAN STREET, SOWCARPET,
CHENNAI-600079
TEL 5227395, 5325787, 5321764

समर्पण

जिनके दर्शन से
हमारा साधना–पथ प्रशस्त हुआ....
जिनकी सद्भावी एवं प्रभावी
पीयूषवर्षिणी कृपा
अप्रतिहत प्रेरणा
एवं सक्रिय सहयोग ने
हमें सदैव प्रोत्साहित किया....
जो हमारे विगत–आगत–अनागत के
पूँजीभूत पुण्यों का प्रमाण है ऐसी
परमविदुषी महामना महासाध्वीद्वय
पू. विमला श्री जी म.
एवं
पू. उर्मिला श्री जी म.
के पुनीत कर–कमलों में
सविनय समर्पित........

शुभाशीष

ससार का प्रत्येक व्यक्ति यात्रा करते हुए मार्ग मे भोजन आदि (जिसे 'पाथेय' कहते है) लेकर चलने का प्रयास करता है तो उसे सुख का अनुभव होता है यह अनुभवित विषय है। इसी प्रकार यह जीवन भी एक यात्रा है, जहाँ पहुँचना है वह मजिल दूर है अत मार्ग मे पाथेय का होना अनिवार्य है। वह पाथेय है सुन्दर, श्रेष्ठ और उत्तम विचार।

चिन्तनशील मस्तिष्क मे यह प्रश्न हो सकता है कि यह पाथेय कहॉ से और कैसे उपलब्ध होगा। महापुरुषो का कथन है- यह पाथेय हमे सत्सग से प्राप्त हो सकता है। आप्तवाणी का श्रवण और पठन ये दो आयाम ऐसे हैं जिसके माध्यम से मनुष्य का जीवन-पथ सुगम बन जाता है। जनकल्याण हित अनेक सुज्ञो ने इस दिशा मे प्रयास किये है। अध्ययन-चितन और लेखन की त्रिवेणी मे निरतर गतिशील रहते हुए साध्वी युगल निधिश्री एव कृपा श्री ने 'जीवन पाथेय' के रुप मे प्रवचन सग्रह दो खडो मे प्रस्तुत किया है जिसमे प्रत्येक जीवन यात्री के लिए एक सदेश है जो आलोक की और गति करवाता है जो आनद मे रहने की प्रेरणा देता है और अमृत को पाने की प्यास जगाता है।

प्रवचन जीवन परिवर्तन का प्रबल साधन है। वैसे तो प्रतिदिन प्रवचन होता है श्रोता सुनते है और आकाश मे बिखर जाता है। यदि इसे सकलित व समायोजित करने का प्रयास ना हो तो अन्य लोगो के लाभान्वित होने की बात

तो दूर, साक्षात् श्रोता भी उसे भूल जाते है। इस दृष्टि से प्रवचन-सकलन का कार्य स्थायित्व और उपयोगिता दोनो दृष्टियो से मूल्यवान है।

प्रस्तुत प्रवचनो मे दिशा और दृष्टिकोण के बदलाव पर अत्याधिक जोर दिया है। वस्तुत दृष्टिकोण को बदलना ही सम्यग्दर्शन है। यही ज्ञान और आचरण की सत्यता का आधार है। साध्वी युगल इसी तरह श्रुतसाधना एव रत्नत्रय की निरामय आराधना द्वारा निर्विघ्न रुप से वीतराग पथ पर बढती हुई अपने लक्ष्य को प्राप्त करे यही हमारा हार्दिक शुभाशीष है।

प्रवचनो के इस सग्रह से सारे लोग लाभान्वित होगे ऐसा हमे विश्वास है क्योकि स्वाध्याय करने वाले को सत्य मिलता है, खोजनेवाले को रत्न मिलता है और मनन करनेवाले को ज्ञान मिलता है। इसी प्रकार जो निष्ठा के साथ 'जीवन-पाथेय' के सूत्रो को आत्मसात् करेगे उन्हे अवश्य मजिल मिलेगी।

आत्म-चितन एव मनन के उद्देश्य से प्रकाशित इस पुस्तक से जन-जन मे धर्म के पावन सस्कार प्रस्थापित हो इन्ही मगल-भावनाओ के साथ

साध्वी विमला श्री

एव

साध्वी उर्मिला श्री

जैन स्थानक डेरावाल नगर

दिल्ली

प्रकाशकीय

भौतिकता की चकाचौंध एवं कामनाओं की तीक्ष्ण ज्वाला में झुलसते हुए सभी संसारी मानव तनाव और आकुलता से संतप्त है। वे सुख की खोज में तो हैं किन्तु सुख प्राप्ति का सतत पुरुषार्थ करते हुए भी उन्हें दुःख का ही निरंतर वेदन करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में सभी आत्माओं को सुख एवं शांति के जीवन-पथ का सही परिज्ञान हो इसी हेतु से मैत्री चैरिटेबल फाउन्डेशन (MCF) विदुषी साध्वी युगल निधि श्री जी एवं कृपा श्री जी द्वारा लिखित 'जीवन-पाथेय' पुस्तक दो भागों में प्रकाशित करने जा रहा है।

MCF का आरंभ से ही एक उद्देश्य यह भी रहा है कि जो साहित्य चरित्र निर्माण करता हो तथा मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठापित करता हो ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन किया जाये। हमें हर्ष है कि अपने ही उद्देश्यों की श्रृंखला में एक नई कड़ी जुड़ रही है। इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि साध्वी युगल ने सरल और सहज शब्दों में अपनी बात पाठकों तक पहुँचाई है। आपके विचारों में एवं भाषा-शैली में कहीं क्लिष्टता और जटिलता नहीं है। पाठक सहज प्रवाह में पढता हुआ बहता चला जाता है।

अद्भुत है इनका व्यक्तित्व, अपूर्व है इनका कृतित्व तथा अनूठी है इनकी आधुनिक किंतु आध्यात्मिकता से ओतप्रोत प्रवचन-धारा। नपे-तुले शब्दों में अपने भावों को गहराई से अभिव्यक्त करने का कला-कौशल आप में है। अपने कथ्य की पुष्टि के लिए दिये गये छोटे-छोटे उदाहरण प्रवचन के

भावो को स्पष्ट, प्रभावी और अत्यधिक हृदयस्पर्शी बना देते है। श्रोता के हृदय पर इसका इतना प्रभाव पडता है कि वह अदर ही अदर अपने को उस परिधि से उस प्रभाव से बधा-बधा महसूस करता है- यह मेरा अपना निजी अनुभव है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक हमारी भावी पीढी के लिये एक जान, शान एव मान का कार्य करेगी। पूज्या साध्वी युगल से हमारी यही अपेक्षा है कि वे इसी प्रकार 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' रुप जनोपयोगी साहित्य द्वारा मानव समाज का ज्ञान-पथ आलोकित करती रहे।

प्रस्तुत प्रकाशन मे अम्बा ज्वेलर्स वालो का प्रमुख रुप से अर्थ सौजन्य सहभागी हुआ। फाउन्डेशन की ओर से आपके मगल भविष्य के लिए शुभकामनाओ के साथ धन्यवाद। इस पुस्तक का प्रकाशन करवाकर आपश्री ने दो प्रकार से लाभ उठाया है। लक्ष्मी का पुण्यकार्य मे वितरण एव साथ ही जिज्ञासु पाठको के लिए स्वस्थ खुराक का प्रसरण। हम इनकी इस उदारता का हार्दिक अभिनदन करते है।

यह पुस्तक आपके समस्याग्रस्त जीवन और मुरझाए मन को प्रसन्नता की नई रोशनी पैदा करेगी ऐसी शुभकामना के साथ

गौतमचंद जैन कांकरिया

एव ट्रस्टीगण MCF

चेन्नई

प्रस्तावना

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समाज मे रहना है और दूसरे व्यक्तियो के साथ सपर्क बनाये रखना है। इस सपर्क मे व्यक्ति, व्यक्ति से तथा व्यक्ति समाज से जिन सूत्रो के आधार पर जुडता है, उन सूत्रो मे नैतिकता विद्यमान रहती है। हमारा पारिवारिक तथा सामाजिक व्यवहार हमारी अपनी नीति को उजागर करता है। इसी नीति का मूल्याकन परिवारो मे और समाज मे होता रहता है। इस मूल्याकन से सभी प्रभावित होते है। इसी के आधार पर आत्मबल की परीक्षा होती है। हर कोई अपने-अपने आत्मबल को बढाना चाहेगा। इस आत्मबल को परखने मे उसके स्वरुप को समझने मे प्रस्तुत पुस्तक 'जीवन पाथेय' बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

विदुषी साध्वी युगल निधिश्री जी एव कृपाश्री जी द्वारा लिखित नीति-कथनो से युक्त और दृष्टातो से पुष्ट पचास प्रवचनो का मैने समग्र रुप से अवलोकन किया है। पुस्तक का प्रयोजन मानसिक सस्कारो का मार्जन करना है। भाषा सहज, सरल और बोध-गम्य है। उद्‌बोधन की शैली इतनी प्रभावक है कि प्रवचन पढकर प्रत्येक पाठक का मन सद्‌विचारो की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकेगा।

प्रत्येक प्रवचन एक नई प्रेरणा, नई स्फूर्ति एव नई चेतना का प्रतीक है। स्वस्थ तथा सुखी जीवन जीने के नये-नये आयाम इसमे है। सघर्षों की ऑधी-तूफानो मे मुस्कान के साथ कैसे जिऍ इसकी एक झलक है। निराशा को आशा मे उजागर करने की तथा विधेयात्मक दृष्टि को बनाने की प्रेरणा इसमे

है। प्रवचनो का क्रम एव उनके शीर्षक इतने आकर्षक है कि जो पाठको को पढने के लिए बाध्य करते है।

'प्रवचन मे मूल बात तो नीति कथन है। तदर्थ प्रवचन का आरभ और अत सदर्भ कथनो से घिरा रहता है। बीच-बीच मे सदर्भो को प्रेषणीय बनाने के लिए और उसे रोचकता प्रदान करने हेतु व्यवहारिक दृष्टात एव कुछ मार्मिक कथाएँ भी दी गई है। प्रवचन बहुत लबे नहीं है कथा मात्र सूत्रो को उजागर करने के लिए ही लिखी है। पुस्तक की रोचकता अत तक बनी रहती है। चाहे काई भी एक प्रवचन पढो शिक्षाप्रद प्रेरणा मन पर अवश्य प्रभाव डालती है।

प्रवचन प्रेषणीय है। अनुभूत कथन है। इसका स्वरुप नैतिक सूत्रो को पकडने और उन्हे दृढ करने के लिए है। साध्वी युगल के चितन और परिश्रम का मै हार्दिक अभिनदन करता हूँ। परमात्मा महावीर की वाणी को सुनने की उसे पढने की और समझने की जिज्ञासा मुमुक्षु आत्मा को होती ही है और जो भी उस प्यास को तृप्ति प्रदान करता है वह निश्चित ही अभिनदनीय और वदनीय है।

साध्वी द्वय अपनी वाणी और लेखनी दोनो से ही साहित्य साधना की ऊँचाइयो को प्राप्त कर एक अनुपम आदर्श प्रस्तुत करेगी ऐसा मुझे विश्वास है। पाठकगण इस पुस्तक का स्वाध्याय कर अपनी मजिल को प्राप्त करे यही इन प्रवचनो का सार्थक मूल्याकन होगा। यह पाथेय जन जन के हाथो का एक सबल बने ऐसी मगल कामनाओ के साथ पुस्तक पाठको के सम्मुख प्रस्तुत है।

डॉ० राजमल बोरा

औरगाबाद (महा०)

आत्म-कथन

~: मंगल मैत्री सहित :~

मानव जीवन विसगतियो की सगति का एव सगतियो की विसगति का सगम है। किसमे क्या है, कहॉ-कहॉ, कैसे-कैसे, क्या-क्या, मिला है, मिलकर भी अलग जैसा, क्षीर मे नीर होकर भी पानी मे तेल जैसा, अस्पष्ट, उलझा और उलटा सा होकर भी सुस्पष्ट, सुलझा और सुल्टा सा प्रतीत होता है। कभी तो ये जीवन बालू मे से तेल निकालने जैसा, कपास के ढेर मे सूई ढूँढने जैसा, ताश के पत्तो का महल बनाने जैसा या लोहे के चने चबाने जैसा दुरुह लगता है तो कभी गुलाब के फूलो की शय्या जैसा सुवासित और आरामदायक भी महसूस होता है।

मानव-मन की इच्छाएँ और कल्पनाएँ अनत है। इनकी रक्तबीज की सी उत्पत्ति अनवरत बनी रहती है ऐसे मे इनकी पूर्ति कहॉ सभव हो सकती है ! अगर ये पूर्ण हो जाती तो यह धरती स्वर्ग बन जाती परतु ऐसा होता नही है। मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ और ही है। जब भी इच्छा के विपरीत कुछ घटित होता है तो मनुष्य के मन मे एक निराशा, भय, घुटन, शका, हीनता और ईर्ष्या का जन्म होने लगता है। ऐसी कष्टपूर्ण जीवन-यात्रा को मगलमय बनाने हेतु प्रत्येक मनुष्य के लिए 'पाथेय' जरुरी है।

श्रमण भगवान महावीर ने अपनी अतिम वाणी

उत्तराध्ययन सूत्र मे पाथेय शब्द की महत्ता बताते हुए फरमाया है-

अद्धाण जो महत तु, सपाहेओ पवज्जई ।
गच्छतो सो सुही होई, छुहा तण्हा विवज्जिओ ।।

अर्थात जो मनुष्य पाथेय (पथ मे काम आनेवाली खाने-पीने की सामग्री) साथ मे लेकर मार्ग पर चलता है तो वह भूख और प्यास के दु ख से मुक्त होकर सुखपूर्वक मजिल को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म का पाथेय लेकर जीवन पथ पर कदम बढाता है वह पीडा से मुक्त होकर निर्विघ्न रुप से मजिल प्राप्त कर लेता है।

जीवन साधना है एक यज्ञ है। उसका सर्वागीण विकास करने और उसको सार्थक बनाने के लिए जिनवाणी को हृदयगम करना जरुरी है। वाणी वह औषधी है जो विश्व-रुपी शरीर के सब रोगो को नष्ट कर उसे चिर-आरोग्य प्रदान कर सकती है। मानव की वाणी मे अपूर्व बल है। वह बल न तलवार मे है और न बदूक की गोली मे। वाणी मानव के हृदय को परिवर्तित कर देती है। साहित्य के पृष्ठ इस बात के साक्षी है कि रणक्षेत्र मे चारण एव भाट लोग जब शौर्य गीत प्रस्तुत करते थे तो उन गीतो को सुनकर वीरो की भुजाएँ फडफडाने लगती थी और वे अपने प्राणो का उत्सर्ग करने के लिए टूट पडते थे। जब वचन का इतना अधिक प्रभाव होता है तो प्रवचन का विशेष प्रभाव स्पष्ट ही है। महापुरुषो की वाणी के पीछे उनका अनमोल अनुभव

चितन और मनन होता है। उनकी ही ज्ञान-गगा की कुछ बूँदे है **'जीवन-पाथेय।'**

इस कार्य को करते हुए प्रत्यक्ष और परोक्षरुप से जिनका भी सहयोग हमे प्राप्त हुआ है, वे सभी पूज्य है, वन्दनीय है। एक बार पुन हम परम तारक तीर्थंकर परमात्मा की वाणी को श्रद्धापूर्वक नमन कर श्रद्धेया गुरूवर्या के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते है।

जिन लोगो ने प्रवचन सुने है और जिन्होने नहीं सुने है उन सभी के लिए इस पाथेय की कोई एक पक्ति या एक शब्द किसी को भी किसी भी रुप मे प्रभावित कर सके, प्रेरणा प्रदान कर सके, पथ प्रदर्शन मे सहयोगी हो सके, आवश्यकता के समय आलबन बन सके तो उसका जीवन अवश्य ही सार्थक होगा

साध्वी युगल निधि-कृपा
डेरावाल नगर जैन स्थानक
दिल्ली

अनुक्रम

1 जीवन पाथेय

एक दिन भी जी मगर अटल विश्वास बनकर जी
कल न बन तू जिंदगी का आज बनकर जी
मत पुजारी बन स्वयं भगवान बनकर जी
एक दिन भी जी मगर ताज बनकर जी

प्रवचनांश

- दिव्य जीवन तक पहुँचने के लिए श्रेष्ठ जीवन एक आवश्यक चरण है
- यद्यपि नदी अपने किनारो को नही बदल सकती किन्तु जीवन अपने निकटस्थ को बदल सकता है। यही तो मानव जीवन की स्वाधीनता है और महत्ता भी।
- जीवन की सर्वोच्च शैली का सूत्र है- न्यूनतम लेना, अधिकतम देना और श्रेष्ठतम जीना।
- सर्वश्रेष्ठ पाथेय यही है- उन लोगो से दूर रहना जिनसे कुछ गलत या अशुभ मिल सकता हो और उन लोगो के करीब रहना जिनसे कुछ शुभ और श्रेष्ठ मिल सकता हो।

1 जीवन पाथेय

जीवन एक पथ है और प्रत्येक मनुष्य यहॉ यात्री है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हर मानव इस जीवन–पथ पर चलता है। इस पथ पर चलते हुए वह चाहता है कि मेरा जीवन आनद, मगल व प्रकाश से भरा रहे और यही उसके मनुष्यत्व की सार्थकता है। वह मनुष्य ही नही वह देश भी धन्य हो जाता है जहॉ आदमी सार्थक जीवन का बोध पाता हो। Bible मे लिखा है– Good life is necessary Step for godly life अर्थात् दिव्य जीवन तक पहुँचने के लिए श्रेष्ठ जीवन एक आवश्यक चरण है। श्रेष्ठ जीवन तो उनका होता है जिनकी प्रत्येक श्वासोच्छ्वास सुवास का कारण बन जाती है।

दुनिया मे तीन तरह से लोग जीवन जीते है। पहले प्रकार का जीवन ऐसा है जिसमे मनुष्य पशु होने के लिए उत्सुक है जहॉ पशु मे और मनुष्य के जीवन मे कोई भेदरेखा नही है। दूसरे प्रकार का जीवन वह है जिसमे मनुष्य, मनुष्य होने के लिए उत्सुक है। जहॉ मनुष्य बाह्य विकास के साथ-साथ जीवन के भीतर की ऊॅचाई को प्राप्त करने की तमन्ना रखता है। तीसरे प्रकार का जीवन वह है जिसमे मनुष्य परमात्मा होने की पराकाष्ठा तक पहुॅचना चाहता है। पशुवत् जीवन-शैली को जघन्य जीवन मानव से मानव की यात्रा का जीवन मध्यम जीवन और उत्तम जीवन वह है जहॉ मानव से महामानव के रुपातरण मे जीवन-कमल परिपूर्ण रुप से विकसित हो जाता है।

इस ससार मे जीनेवाला हर बुद्धिमान् Standard of

living चाहता है। हम देखते है बदलते समय के साथ सब कुछ बदल रहा है। बदलते युग के साथ आबोहवा बदली, भाषा बदली, सिक्का बदला, मन बदला, रहन-सहन बदला और जीने के सब मापदंड बदल गये। प्राचीन ऋषियों का कथन है- जीने का श्रेष्ठ मापदंड इतना ही है कि जीवन में विस्तार, छाया, सौरभ और सरसता हो। ऐसा जीना सही अर्थ में High Standard of living कहलायेगा।

जीवन नदी की वह धारा है, जो किनारों को छूकर बहा करती है। कुछ न कुछ नदी, किनारों को दिया करती है तो कुछ न कुछ किनारों से लिया भी करती हैं। जीवन के जो भी निकटवर्ती हैं, वे जीवन–नदी के किनारों की भांति हैं। जीवन उन्हें ही कुछ देता है और उन्हीं से कुछ लेता है। जीवन के निकटस्थ जो है वह पवित्र उदात्त और श्रेष्ठतम है। यद्यपि नदी अपने किनारों को नही बदल सकती किन्तु जीवन अपने निकटस्थ को बदल सकता है। यही तो मानव–जीवन की स्वाधीनता है और महत्ता भी।

यदि जीने की शैली का गहराई से आकलन किया जाय तो यह सारा जीवन एक Sharing है। जीवन की सर्वोच्च शैली का सूत्र है– न्यूनतम लेना, अधिकतम देना और श्रेष्ठतम जीना। प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से उठते–बैठते, चलते-फिरते, जाने–अनजाने जिनसे भी हम मिलते हैं उनसे जीवन-ऊर्जा का आदान–प्रदान होता है। ऐसे मे कुछ भेट ली जाती है और कुछ भेट दी जाती है। मनोविज्ञान का एक नियम है जो भीतर है वही बाहर छलकता है अतः जो भीतर है हम वही बॉटना चाहते हैं।

जीवन तो जिया ही जा रहा है और जिया ही जायेगा किन्तु श्रेष्ठतम जीवन कैसे जीना यह विचार योग्य प्रश्न है। केवल कुछ स्थूल अर्थों में जी लेना जीवन का उथलापन है। उथले और ऊपरी जीवन में मात्र कतिपय भौतिक आवश्यकताएं छायी रहती है और पूरा जीवन उनका अनुकरण करने में बीत जाता है। जीवन को कुछ गहन अर्थ में समझने का प्रयास करिये। जब आप अपनी ही गहराई में जायेंगे तो आपको अपने में न केवल राग, द्वेष, झूठ, पाखंड, लोभ, कपट, अहंकार आदि बुराई वहाँ बैठी मिलेगी अपितु सत्य, करुणा और पवित्रता के भाव भी कहीं न कहीं दबे हुए ही सही किन्तु अवश्य दिखाई देगे। हो सकता है यह अन्तःदर्शन व्यक्ति का जीवन ही बदल दे।

कहा भी है जीवन-पथ का सर्वश्रेष्ठ पाथेय यही है- 'उन लोगों से दूर रहना जिनसे कुछ गलत या अशुभ मिल सकता हो और उन लोगों के करीब रहना जिनसे कुछ शुभ और श्रेष्ठ मिल सकता हो' अपना बचाव करने के लिए हर पल सजग रहना क्योकि अभी हम इतने योग्य नहीं बन पाये है कि कोई हमें गलत या अशुभ दें और हम न लें। अभी हमारा इतना साहस नहीं है कि हम दूसरों को मुक्त मन से यह कह दे कि मुझे तुम्हारी ऐसी भेट स्वीकार नहीं है। जीवन मार्ग में जब भी कोई कुछ देना चाहेगा तो हम ले ही लेंगे चाहे आवश्यकता से ले या औपचारिकता से, शरम से ले या मजबूरी से ले और चाहे बदले में कुछ देने की इच्छा से लें किन्तु ले ही लेते हैं। इस प्रकार कचरा इकट्ठा करने की सहज आदत ऐसी हो गई है कि अब हम इन्कार

नहीं कर पाते।

यदि कोई व्यक्ति रास्ते में कुछ भी अफवाहें सुनाना शुरु करें तो हम आतुर मन से एवं उत्सुकता से सुनने लग जाते हैं। बिना यह सोचे–समझे कि इन अफवाहों कों भीतर में ले जाने से क्या परिणाम होगा? जरा सोचो, क्यों सुन रहे हो उन बातों को? क्यों नहीं हम उसे यह कह पाते कि भाई! माफ कर दें, ऐसी बातों में मुझे कोई रस नहीं है। किसके यहाँ चोरी हुई; किसने कितना कमाया; किसने क्या खरीदा; किस सास–बहू की लड़ाई हुई; अमुक ने आत्महत्या क्यों की; किन भाई-भाई का विभाजन हुआ इत्यादि व्यर्थ की बातों से क्या लेना देना? किसी ने सच ही कहा है–

क्यों गैर की उधेड़बुन में रहते हो हरदम ।
गैर से पहले अपना गिरेबान तो देखो ।।

यह तो बड़ी हैरानी की बात है कि हमारे घर के आँगन में कोई कचरा डाल जाय तो हम नाराज होकर उससे झगडने चले जाते हैं। लेकिन जब कोई हमारे मस्तिष्क में झूठी और निरर्थक बातों का कचरा डालता है तो न हम नाराज होते हैं और न ही इन्कार करते हैं बल्कि रसपूर्वक सुनते हैं।

एक माली खाली टोकरी लेकर बगीचे में उगे हुए पौधों के पास फूल तोडने के लिए गया। वहाँ कुछ देर तक चमेली, मोगरा, कनेर, गेंदा आदि के फूल तोड़-तोड कर अपनी टोकरी में वह डालता रहा। सहसा पास ही उसे हँसते हुए कुछ गुलाबी चेहरे दिखाई दिये। माली उनके पास जा पहुँचा। वे गुलाब के पौधे थे। एक गुलाब से माली ने प्रश्न किया– "क्या आप कृपया मुझे अपने हँसने का कारण बताने का

कष्ट करेंगे?"

उत्तर देते हुए गुलाब ने कहा– "अवश्य, परन्तु इससे पहले आप हमारे प्रश्न का उत्तर दीजिए कि प्रतिदिन आप इस फुलवारी में से फूल ही क्यों चुनते हैं ? कांटे क्यों नहीं चुनते?"

माली ने हंसते हुए उत्तर दिया- "जिनके लिए यह फूल चुने जाते हैं वे मनुष्य केवल फूलो से ही प्यार करते हैं, कांटो से नहीं।"

यह सुनते ही गुलाब ने व्यंग्य भरे स्वर में कहा- "यदि मनुष्य की ऐसी प्रकृति है तो वह दूसरे मनुष्य के जीवन से कांटों को चुनना, गिनना और सुनना क्यों पसंद करता है?"

माली इस प्रश्न से निरुत्तर हो गया और तभी उसे उन गुलाबी चेहरों के हँसने का कारण समझ मे आ गया। वे मनुष्य की प्रकृति और प्रवृत्ति की हॅसी उड़ा रहे थे।

जीवन में न अशुभ भावों का संग्रह करें और न उसका आदान-प्रदान करें। जीवन-पथ में श्रेष्ठतम भावों का, ऊर्जा का व आचरण का पाथेय लेकर चलें और प्रतिक्षण उसे ही वितरीत करें। ऐसा मूल्यवान पाथेय जिस पथिक की जीवन-झोली में होगा उसकी यात्रा का हर पड़ाव सुगमता से पार होगा।

2 जब जागो तभी सबेरा

जिंदगी मिला करती है कुछ कर गुजरने के लिये
मुस्कान मिला करती है बनकर बिखरने के लिये
ओढ़कर चादर क्यों पड़ा है तू उदास
जिन्दगी मिलती है जाग कर जीने के लिये

प्रवचनांश

- जीवन को जानने के लिए और जीने के लिए जागना अनिवार्य है।
- जिसका अंतस् सोया हुआ है वह जागकर भी सोया है और जिसका अंतस् जागा हुआ है वह सो कर भी जागता है। अतस् की ऑखों का खुल जाना ही जागृति है।
- यदि जागना है तो जागे हुए व्यक्ति का साथ चाहिए। जागृत व्यक्ति का एक वचन भी जागृति ला सकता है।
- जब भी मोह-निद्रा मे सोई हुई कोई आत्मा जागती है तो सर्वप्रथम उसकी दृष्टि बदलती है। दृष्टि के बदलने से सोचने-समझने का ढंग भी बदल जाता है।

2 जब जागो तभी सवेरा

जीवन एक बहुमूल्य संपदा है। इसका मूल्यांकन वही कर सकता है जिसके भीतर का दीप प्रज्वलित हो गया हो। अक्सर होता यही है कि जिंदगी बीत जाती है लेकिन सूरज नहीं निकलता, सुबह नहीं होती। ऐसे में सारे जीवन के हीरे हम पत्थर समझकर फेंक चुके होते हैं। जीवन की संपदा को पत्थर मानकर फेंकनेवाले लोगों को यदि कोई समझाएँ कि जिन्हें तुम पत्थर समझकर फेंक रहे हो वे अनमोल हीरे हैं तो वे बहुत नाराज़ होंगे। इसलिए नहीं कि जो बात कही गई है वह गलत है बल्कि यह बात उन्हें स्मरण दिलाती है कि उन्होंने बहुत सी संपदा फेंक दी है।

जीवन क्या है यह हम पता भी नहीं कर पाते कि जिंदगी अपनी **Boundary** को पूरी करने की तैयारी में होती है। जीवन में क्या-क्या छिपा था इसका अनुभव भी नहीं हो पाता और जीवन हमारे हाथ से रिक्त हो जाता है साधारणतया सभी लोग इतने सौभाग्यशाली नही होते कि जीवन के सत्य को खोज पाएँ।

जीवन को जानने के लिए और जीने के लिए जागना अनिवार्य है। परमात्मा महावीर का कथन है- जन्म और मृत्यु के बीच जीवन का जो अत्यल्प समय है उसे यू ही सोने मे गंवाना उचित नहीं है। मानव जन्म तो नींद से जागने का परम अवसर है। हमें जो भी साधन चाहिए वह सब तो मिले हुए हैं ही सिर्फ जागने का उपक्रम करना है। यह भी ख्याल में रहें- जागने के लिये कोई विशेष उपक्रम की जरुरत

नहीं है। सिर्फ द्वार को खोलना है। बाहर सूरज मौजूद है अतः अंतस् के द्वार खोलने का श्रम कर लेना है। रोशनी उपलब्ध है मात्र स्वयं की आँखों को खोलना हैं। ऑखें स्वयं की चाहिए दूसरों की आँखों के सहारे जीवन नहीं गुजारा जा सकता।

बृहत् कल्पसूत्र के अन्दर एक सुंदर रुपक आता है। परमात्मा ने बड़ा सुंदर रुपक आत्म-चेतना को जगाने के लिए प्रस्तुत किया। एक व्यक्ति जिसकी आँखें नहीं हैं। वह अंधा व्यक्ति अपने परिवार के साथ रहता है। उसका बेटा कहता है- "पिताश्री ! आप अपनी आँखों की चिकित्सा करवा लीजिए ताकि आप देख सकें।"

वह अंधा व्यक्ति बोला- "बेटा ! मुझे रोशनी की जरुरत कहाँ है? तुम मेरी आँखें हो, मेरी पत्नी, मेरी पुत्रवधु मेरी ऑखें हैं। इतनी-इतनी आँखें मेरे पास में हैं फिर मुझे आँखों की क्या ज़रुरत है? मैं तुम्हारी ऑखों से ही देख लूँगा।"

पुत्र ने खूब समझाया लेकिन वह नहीं माना। वह सोचता था कि मुझे अपनी ऑखो की क्या आवश्यकता है? उसके मन में यह बात बैठ गई थी कि इन सबकी आँखों से मेरा काम पूरा हो जायेगा।

शास्त्र में बताया गया कि उसी घर में एक दिन आग लग गई। घर के सभी सदस्य अपने आपको बचाने के लिये दौड़ पडे। किसी को भी दूसरे की चिन्ता न थी, जब मृत्यु सामने हो तो स्वयं के सिवा कोई नजर नहीं आता। वह अंधा व्यक्ति वही बैठा रह गया। बडी आवाज लगाई पर कोई भी उसकी रक्षा नहीं कर सका। वह वृद्ध व्यक्ति वहीं

पर आग में जलकर समाप्त हो गया।

तात्पर्य यह है कि आँखें स्वयं की चाहिए, दूसरों के सहारे जीवन नहीं गुजारा जा सकता। जिनवाणी कहती है यदि स्वयं की आत्मा को जगाना हो तो पुरुषार्थ भी स्वयं को ही करना पडेगा। वास्तविक रुप से देखा जाय तो जागरण का द्वार अंतस् है। जिसका अंतस् सोया हुआ है वह जागकर भी सोया है और जिसका अंतस् जागा हुआ है वह सो कर भी जागता है। अंतस् की आँखों का खुल जाना ही जागृति है।

भीतर की बंद ऑखों को खोलने के लिए श्रम तो करना ही पडेगा। नींद चाहे तूफान की तरह क्यों न हो किन्तु जागरण तो दीये की तरह होता है। जितनी जल्दी जाग जाओ और चल पड़ो उतना ही अच्छा है। हम तो शोरगुल वाली जिंदगी जीने की आदतों से बंधे हुए हैं ठीक उसी तरह जैसे जो आदमी रेल्वे-स्टेशन पर रहता है उसको ट्रेन के शोरगुल को सहने की आदत पड जाती है।

जागना कोई मंत्र नहीं है कि आप जागना-जागना रटते रहेंगे और जाग जायेंगे। जागना तो जीवन की ऐसी विधि है जिसमें मात्र अंतस् के द्वारो को खोलना है। यदि जागना है तो जागे हुए व्यक्ति का साथ चाहिए। जैसे संगीत सीखना हो तो किसी ऐसे संगीतज्ञ का साथ चाहिए जिसके हाथ सधे हुए हों। जागृत व्यक्ति का एक वचन भी जागृति ला सकता है। एक वचन सुनकर ही वाल्मिकी लुटेरा जागा था और एक वचन सुनकर धन्ना-शालीभद्र ने गृहवास का त्याग किया था।

महाराष्ट्र के सुविख्यात संत एकनाथ के जीवन की घटना है। संत बनने से पूर्व एकनाथ एक मंदिर के साधारण पुजारी थे। उनकी दिनचर्या का क्रम ऐसा था कि प्रातः उठकर सबसे पहले मंदिर की सफाई करना, पूजा करना और सांयकाल की आरती के बाद सारा हिसाब-किताब महंत जी को दिखाकर मंदिर के द्वार को बंद कर देना।

एक बार रात्रि के समय एकनाथ जब हिसाब करने के लिए बैठे तो बड़े परेशान हो गये। क्योंकि उन के हिसाब में एक पाई की गड़बड़ हो रही थी। उन्होंने अपने दिमाग पर जोर डालकर खूब सोचा परंतु हिसाब नहीं मिल सका। निरंतर तीन दिन और तीन रात्रि उनकी इसी उधेड़बुन में बीती।

आखिर चौथे दिन सुबह सहसा उन्हें उस पाई का हिसाब मिल गया तो वे खुशी से झूम उठे। आनंदित होकर वे सीधे मंहतजी के पास पहुँचे और प्रसन्न होकर कहने लगे- "महंतजी ! आज मेरी मेहनत सफल हो गई। जिस एक पाई का हिसाब मुझे तीन दिनों से नहीं मिल रहा था वह आज अचानक मिल गया है।

यह सुनते ही महंतजी मद-मंद मुस्कराते हुए बोले- "एकनाथ ! एक पाई का बिगड़ा हिसाब मिल जाने से तुझे इतनी खुशी हुई तो जन्म-जन्म से बिगड़ी हुई तेरी आत्मा का हिसाब जब मिल जाएगा तो तेरा बेड़ा पार हो जाएगा।" महंतजी के इस वचन को सुनकर पुजारी एकनाथ की आत्मा जागृत हो गई और उसके बाद वे संत एकनाथ कहलाये।

जब भी मोह-निद्रा में सोई हुई कोई आत्मा जागती

है तो सर्वप्रथम उसकी दृष्टि बदलती है। दृष्टि के बदलने से सोचने समझने का ढंग भी बदल जाता है। इस तरह जीवन की दशा और दिशा दोनों बदल जाती हैं। जब आत्मा भीतर से जागती है तब परिणाम स्वरुप बाह्य घटनाओं का मूल्य स्वतः ही कम हो जाता है। जैसे सांप अपनी केंचुली को छोड़कर आगे सरक जाता है। वैसे ही जागृतात्मा बाहर से भीतर की ओर सरक जाती है तब उसके जीवन का सूर्योदय हो जाता है।

एक बार आत्मा जागृत हो गई तो फिर उससे भूलें नहीं होती। ऐसा नहीं कि भूल करनी नहीं पडती या रोकना पड़ता है या लडना पड़ता है या याद रखना पडता है। उसकी हालत ऐसी हो जाती है जैसे ऑखें खुली हो तो आदमी दीवार से नहीं टकराता अपितु दरवाजे से निकल जाता है। उसका आंतरिक और बाह्य जीवन निर्मल हो जाता है।

सिर्फ जागो !!! जागरण की बेला हमेशा है। ऐसा कोई क्षण नहीं जब हम जाग न सके; पलक न खोल सके। किसी कवि की कुछ पंक्तियाँ है-

भाई सूरज ! जरा इस आदमी को जगाओ
भाई पवन ! जरा इस आदमी को हिलाओ
यह जो सोया पड़ा है सपनों में खोया पड़ा है
भाई पंछी ! इसके कानों पर चिल्लाओ
भाई चांद ! जरा इस आदमी को वक्त पर जगाओ।

3 मनवा ! तेरे रुप अनेक

मन तो मौसम सा चंचल है
सबका होकर भी न किसी का
अभी सुबह का अभी शाम का
अभी रुदन का अभी हंसी का

प्रवचनांश

- आदमी एक बहुत बड़ा गिरगिट है जो एक घंटे में कितने ही मनोभावों को बदल लेता है।
- जब दो आदमी मिलते हैं तब सिर्फ दो आदमी नहीं मिलते, छह आदमी मिलते हैं।
- प्रत्येक व्यक्ति के दो चेहरे है- Private Faces और Public Faces अथवा Original Faces और Duplicate Faces
- नकली और सार्वजनिक चेहरा तो प्याज के छिलके की तरह है।
- मन रुपी नदी को नहर बनाना होगा जिससे वह एक ही दिशा में केन्द्रित होकर सार्थक रुप से उपयोगी हो सके।

3 मनवा ! तेरे रुप अनेक

शासनपति भगवान महावीर का कथन है-

अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे से केयणं अरिहई पुरइत्तए

अर्थात् मनुष्य का मन अनेकचित्त वाला है। इस बहुचित्तता से किया गया हर कार्य ऐसा है जैसे चलनी से पानी भरने का प्रयास करना।

अनेकचित्तता का सीधा अर्थ है एक चित्त का अनेक टुकड़ों में बंट जाना। किसी वस्तु को अनेक हिस्सों में बांट दिया जाय तो उसकी दुर्दशा स्पष्ट है यद्यपि ऊपरी तौर पर चित्त एक ही नजर आता है किन्तु गहराई से देखा जाय तो प्रत्येक मनुष्य Poly-Psychic है। जितने दृश्य हैं उतने चित्त है। हमारा सम्बन्ध जिस-जिस दृश्य से जुड़ता है चित्त उसी प्रकार का बन जाता है। जैसे Museum में अनेक प्रकार के दर्पण होते हैं। किसी दर्पण मे हमारा प्रतिबिंब बहुत अधिक लंबा, किसी मे छोटा, किसी में दुबला तो किसी मे मोटा दिखाई देता है। दर्पण के अनुसार तस्वीर बदलती है पर व्यक्ति तो एक ही है। ठीक इसी प्रकार चित्त तो एक ही है परंतु दृश्यों के अनुसार वह विभिन्न रुपों मे बट जाता है।

चित्त की अनेकता को जानना यह भगवान महावीर का अत्यत मनोवैज्ञानिक संदेश है। आज के मनोवैज्ञानिकों ने तो अब सिद्ध किया कि चित्त एक नहीं है अर्थात् Uni-Psychic नहीं है किन्तु भगवान महावीर ने आज से 2525 वर्ष पूर्व ही यह बात बता दी थी। मनोविज्ञान कहता है कि मनुष्य

की अनेकचित्तता जटिलता पैदा करती है। इस जटिलता की बुनियादी बात यह है कि व्यक्ति जो नहीं है उसे दिखाने की कोशिश में लग जाता है। ऐसे में सत्य तक पहुँचना मुश्किल है और वह स्वयं भी इसी भ्रांति में जीने लग जाता है। जैसे कि कहा भी है-

मैं उसे खुद भी समझ बैठा हूँ अपना चेहरा ।
मैंने जो ओढ़ा था मुखौटा जमाने के लिए ।।

अक्सर मनुष्य मुखौटे ओढ़ लेता है। जितना प्रेम नहीं है उतना प्रेम दिखाने की कोशिश करता है। जितना भीतर से धार्मिक नहीं है, बाहर में उतनी ज्यादा धार्मिक क्रियाएं करता है। जितना भीतर से भयभीत है उतना ही बाहर में साहस और पराक्रम की बातें करता है।

ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसका चित्त अनेक खंडों में बंटा हुआ न हो। मन का ढंग क्षण-क्षण में बदलता है। मन प्रातः काल जो सोचता है, मध्यान्ह में कुछ दूसरी बात सोचता है और सांयकाल तीसरी ही बात सोचता है। इस तरह मनुष्य का मन गिरगिट की भाँति रंग बदलता है, तभी तो कहते हैं कि आदमी एक बहुत बडा गिरगिट है जो एक घंटे में कितने ही मनोभावों को बदल लेता है। यदि बदलते भावो की Film उतारी जाय तो High Frequency का Camera चाहिए। एक ही मनुष्य सामनेवाले को देखकर तुरंत अपना रग, दृष्टि, चेहरा, वाणी, व्यवहार, व्यक्तित्व और अस्तित्व बदल लेता है। मन में समुद्र की भॉति सैकड़ों ज्वार-भाटे उमड़ते हैं जो असंगत और स्व-विरोधी होने से यहाँ हर व्यक्ति त्रस्त है।

इस अनेकचित्तता के कारण ही प्रत्येक मनुष्य होता कुछ है और दिखलाता कुछ है। कहता कुछ है और करता कुछ है। इसीलिए कहा जाता है कि जब दो आदमी मिलते हैं तो सिर्फ दो आदमी नहीं मिलते, छह आदमी मिलते हैं। हर आदमी कम से कम तीन चेहरे रखता है। एक जैसा वह है हाँलाकि वह कैसा है इसका उसे भी पता नहीं है क्योकि इतना लंबा समय हो गया अपना उपयोग करे अतः अपने असली चेहरे से उसकी पहचान ही टूट गई। दूसरा चेहरा वह है जैसा वह समझता है कि मै हूँ किन्तु वास्तव मे वह वैसा नहीं है। तीसरा चेहरा वह है जैसा वह दिखाना चाहता है कि मैं ऐसा हूँ।

एक फोटोग्राफर ने अपने दुकान के सामने एक ऐसी तख्ती लगाई जिस पर लिखा हुआ था यहॉ तीन तरह के फोटो उतारे जाते हैं। पहले प्रकार के फोटो की कीमत है पॉच रुपये जिसमें वैसी फोटो उतारी जायेगी जैसे कि आप वास्तव मे है। दूसरी तरह का फोटो ऐसा है जो दस रुपये में खींचा जायेगा उस मे जैसा आप दिखायी पडते हैं वैसा चित्र आयेगा। तीसरा फोटो है पच्चीस रुपये का जिसमें आप जैसा दिखायी पड़ना चाहते हैं वैसा चित्र तैयार हो जायेगा।

एक देहाती व्यक्ति ने यह तख्ती पढी तो उसके मन मे जिज्ञासा जागी। वह भीतर गया और सोचने लगा कि एक ही आदमी के तीन तरह के फोटो... जब पॉच रुपये में भी फोटो निकल सकता है तो पच्चीस रुपये क्यों खर्च किये जाय? वह फोटोग्राफर से बोला- "भाई साहब ! मेरा पॉच रुपये वाला फोटो निकाल दीजिए।"

यह सुनकर वह फोटोग्राफर जोरों से हँसने लगा और अपने हँसने का कारण बताते हुए उसने कहा- "आज तक मेरी दुकान पर कोई व्यक्ति ऐसा नहीं आया कि जो पॉच रुपये वाला फोटो खिंचवाने के लिए तैयार होता हो। तुम ही पहले व्यक्ति हो जो वास्तव में जैसे हो वैसे ही दिखना चाहते हो। अधिकांश लोग तो पच्चीस रुपये का ही खिंचवाते हैं और यदि पैसे की कमी होती है तो लोग दस रुपये वाला खिंचवाते हैं क्योंकि कोई भी नहीं चाहता कि वह जैसा है वैसा दिखाई पड़े।" यह है मन की बहुरुपता। हम वैसे दिखाई देना चाहते हैं जैसे हम नहीं हैं।

अहंकार शरीफ बदमाश है जो हर पल ठग रहा है। यहाँ सब प्रदर्शन में विश्वास करते हैं इसलिये कोई भी व्यक्ति अपने लिए नहीं जीता, दूसरो के लिए जीता है।

ख्याल करें चौबीस घंटो में हम चौबीस से ज्यादा चेहरे बदल लेते हैं। किसी चिंतक ने लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति के दो प्रकार के चेहरे हैं- एक Private Faces, दूसरा Public Faces या एक है Original Faces और दूसरा Duplicate Faces असली और व्यक्तिगत चेहरे को लेकर कोई भी सार्वजनिक स्थान पर नहीं जाता नकली चेहरा और सार्वजनिक चेहरा तो प्याज के छिलके की तरह है। एक छिलका निकालो फिर छिलका आ जाता है। प्याज का अपना कोई अस्तित्व नहीं है, छिलको का जोड ही प्याज है वैसे ही चेहरों का जोड़ ही जीवन है।

हम चेहरे को बदलने मे, रंग बदलने में बडे कुशल

हैं। पत्नी के सामने कुछ तो मित्र के सामने कुछ; मालिक के सामने कुछ तो नौकर के सामने कुछ; बच्चों के सामने कुछ होते हैं और घर के बुजुर्गों के सामने कुछ। ऐसा आदमी का दोहरा व्यक्तित्व है।

आज आदमी की हालत ऐसी है जैसे किसी ने बैलगाडी के दोनों ओर बैल जोड़ दिये हो। जब एक तरफ के बैल चलने के लिए तैयार होते हैं और कुछ दस कदम तक चलते हैं तो दूसरी तरफ के बैल उसी समय चलने के लिए तैयार हो जाते हैं और वे गाड़ी को अपनी तरफ खींच लेते हैं। इस तरह गाड़ी तो सारी रात चलती है किन्तु पहुँचती कहीं भी नहीं ठीक इसी प्रकार हमारे भीतर भी अनेक दिशाएँ चल रही हैं, हमारा एक पैर पश्चिम की ओर जा रहा है तो दूसरा पूर्व की ओर ऐसे में हम कहीं नहीं पहुँच पाते।

हम तभी पहुँच सकते हैं जब हम समग्रीभूत होकर एक दिशा में गति करें। एक साथ हर दिशा में बहने की कोशिश करने से सारी शक्तियाँ बिखर जाती हैं। बिखरी हुई समस्त शक्तियाँ नदी की भाँति जहाँ-तहाँ इस्तेमाल हो जाती हैं। इसलिये इस मन रुपी नदी को नहर बनाना होगा जिससे वह एक ही दिशा में केन्द्रित होकर सार्थक रुप से उपयोगी हो सके। इसके लिए अपने चित्त की शक्ति को एक ही दिशा मे बटोरना, संवारना और साधना सीखो जिससे अनेक उपलब्धियॉ हासिल हो सकती है।

4 इन्कार में दुःख स्वीकार में सुख

जितने दिन जीओ मजे में जीओ
किसी को तकलीफ मत दो
कोई तकलीफ दे तो
उसे तकलीफ मत मानो

प्रवचनांश

- यह संसार विचित्रता, विविधता और विषमता से भरा हुआ है।
- जीवन दुःख नही है, जीवन को देखने के ढंग में दुःख है।
- ऐसा विधेयात्मक चिंतन करना होगा कि दुःख मेरे जीवन विकास का उपयोगी तत्व है, जिससे मेरे व्यक्तित्व का विकास होता है।
- जिस दिन हम अपने हृदय की दीवार पर दुःख रुपी मेहमान के लिए Welcome का Board लगा देगें तभी हृदय का भार हल्का हो सकेगा।
- परिस्थिति को नहीं, मनः स्थिति को बदलने की साधना करें।

4 इन्कार में दुःख स्वीकार में सुख

विश्व के समस्त प्राणियों की एकमात्र यही कामना है कि मुझे सुख मिल जाय और मेरे जीवन के तमाम दुःख टल जाय। सुख प्राप्ति के लिए मनुष्य अनेक प्रकार की प्रवृत्ति करता है, नानाविध प्रयास करता है किन्तु अफसोस यह है कि हर प्रवृत्ति और प्रयास उसे दुःख के महागर्त्त में डूबो देता है। इसीलिए दुनिया का एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जो दुःखी न हो।

अक्सर लोग अपने दुःखों की चर्चा करते हैं। उस चर्चा में ही समय बीत जाता है और अवसर हाथ से निकल जाते हैं। हमारी हालत ऐसी है जैसे एक आदमी को तीर लग गया जो किसी शिकारी ने भूल से जानवर समझकर मारा था। जिसे तीर लगा वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं था वह एक दार्शनिक था। तीर निकालने के लिए लोगों की भीड़ इक्ट्ठी हो गई किन्तु उस दार्शनिक ने कहा- "ठहरो ! पहले मुझे इस बात का पक्का पता लगना चाहिए कि क्या मैं इस तीर को निकालने के बाद जिन्दा रहूँगा? मैं पहले यह भी जानना चाहता हूँ कि तीर कहाँ से मारा गया है और किसने मारा है? यह तीर विष-बुझा है या साधारण?" इत्यादि प्रश्नों को सुनकर लोग हंसते हुए आगे निकल जाते थे। ठीक इसी प्रकार दुःख का तीर सभी के जीवन में लगा हुआ है। हम भी उस तीर को निकालने से पहले मात्र उसकी चर्चा में ही समय बीता देते हैं।

यह ससार विचित्रता, विविधता और विषमता से भरा हुआ

है। ऐसे संसार में जीते हुए हर कदम पर दुःख तो होंगे ही परंतु आते हुए दुखों को हम सुख में बदले यही हमारी विशेषता है। दुःख को रोकना मनुष्य के बस की बात नहीं है किन्तु आये हुए दुःखों को सुख में बदलना उसके हाथ में हैं।

ज्ञानियों का कथन है कि दुःखों के बीच यदि शांति से जीना हो तो अपनी दृष्टि को बदल लो क्योंकि दृष्टि से ही सुख-दुःख का संवेदन होता है। यदि कोई दुःख का संवेदन करें तो उसे अवश्य दुःख होगा और ना करें तो नहीं होगा। अगर हमने अपने को दुःखी माना तो हम दुःखी होते चले जायेंगे और सुखी माना तो सुखी होंगे। दुःख और सुख का संवेदन होना हमारे संवेदन केन्द्र पर निर्भर करता है।

एक बार सूफी फकीर बायजीद से पूछा गया: "आप सदा इतने प्रसन्न कैसे रहते हो? इसका राज क्या है?"

बायजीद ने कहा- "मेरे जीवन का एक नियम है-सुबह जब मैं उठता हूँ तो मेरे सामने एक प्रश्न होता है कि आज के दिन प्रसन्न रहना है या नहीं? तब कुछ सोचकर मैं अक्सर सुख का विकल्प ही चुन लेता हूँ। मैं सोचता हूँ कि दुःख का विकल्प क्यों चुना जाय? चुनाव तो श्रेष्ठ का ही करना चाहिए अतः मैं प्रसन्न रहता हूँ।"

हम सोचते हैं कि सुखी तो हम तब होंगे जब सुख की कोई घटना घटेगी; कोई लॉटरी खुलेगी तब सुखी हो जायेंगे। जीवन दुःख नहीं है, जीवन को देखने के ढंग में दुःख है।

हम दुःख को कैसे देखते हैं, कहाँ से देखते हैं, किस दृष्टिकोण-बिन्दु से नापते हैं इस पर सब निर्भर करता है। आप्त पुरुषों का कथन है- **'इन्कार में दुःख और स्वीकार**

में सुख।' दुःख का इन्कार मत करो, उसका स्वीकार करना सीखो क्योंकि इन्कार में दुःख है और स्वीकार में सुख है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह दुःख का तिरस्कार या प्रतिकार नहीं करें अपितु उसका स्वीकार करना सीखें आज तक की हमारी जीवन शैली दुःखों से डरने की, बचने की, भागने की और उसे छिपाने की रही है।

यदि हम दुःख का स्वीकार करना चाहते हैं तो हमें दुःख को देखने का Angle बदलना होगा। ऐसा विधेयात्मक चिंतन करना होगा कि दुःख मेरे जीवन-विकास का उपयोगी तत्त्व है, जिससे मेरे व्यक्तित्व का विकास होता है। दुःख मेरे द्वारा बोये गये बीज का ही फल है अतः उसका मुझे मेहमान की तरह स्वागत और स्वीकार करना है। जब दुःख के बीज मैंने ही बोये हैं तो अब फसल तैयार होने पर मुझे नाराज क्यों होना चाहिए? जिस दिन हम अपने हृदय की दीवार पर दुःख रुपी मेहमान के लिए Welcome का Board लगा देंगे तभी हृदय का भार हल्का हो सकेगा।

एक गुरु और शिष्य दीर्घ काल की तीर्थयात्रा के पश्चात् वर्षा-वास हेतु अपनी कुटिया की ओर कदम बढ़ा रहे थे। संध्या का समय था। दोंनो जब कुटिया के निकट पहुँचे तो उन्होंने कुटिया को आधी उजड़ी हालत में देखा। वर्षा के आँधी-तूफान ने आधे झोंपड़े को उड़ा दिया था और आधा जैसी-तैसी हालत में शेष था।

यह दृश्य देखकर शिष्य एकदम क्रोधित हो गया और उत्तेजना भरे स्वर में उसने कहा "गुरुदेव ! इन्हीं बातो से तो मुझे भगवान पर शक हो जाता है। जो दुर्जन है उनके

तो महल भी सुरक्षित है। हम दिन-रात प्रभु-भजन में बीताते हैं तथापि भगवान हमारे छप्पर का भी ख्याल नहीं करता।"

यह सुनकर गुरु ने आनंदित होकर कहा- "वत्स ! मैं तो उस परमात्मा को धन्यवाद देता हूँ कि उसने हमारी बहुत रक्षा की है। उसकी करुणा का मैं बहुत ऋणी हूँ क्योंकि आंधी-तूफान का क्या भरोसा था ? वह तो पूरा छप्पर ही उडाकर ले जा सकता था परन्तु यह उस परमात्मा की असीम कृपा है कि उसने हम भक्तो पर इतना रहम किया और झोंपड़े को इस हालत में रखा कि थोडी सी मेहनत से उसका पुनः निर्माण किया जा सकता है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि परिस्थिति एक होने पर भी दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। एक होती है परिस्थिति और एक होती है मनःस्थिति। जीवन में कोई भी परिस्थिति या घटनायें शुभाशुभ कर्मों के आधार पर घटित होती हैं। अनुकूल परिस्थिति पुण्य के फल का द्योतक है तो प्रतिकूल परिस्थिति पुण्य की क्षीणता दर्शाती है। अतः परिस्थिति को पलटने का प्रयास छोड़ देना चाहिए। दूसरी है मनःस्थिति जो मन के आधीन होती है जिसे बदलना हर मनुष्य के हाथ में है। परिस्थिति को नहीं, मनःस्थिति को बदलने की साधना करें। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि वह हर उपस्थित परिस्थिति का स्वीकार करे और उपलब्ध इष्ट और अनिष्ट संयोग का स्वीकार करना सीखें। स्वीकार में शांति है, प्रसन्नता है और इन्कार में अशांति है, व्यथा है। किसी ने सच ही कहा है-

दिल दे तो इस मिजाज का परवरदिगार दे ।
जो रंज की घड़ी भी खुशी से गुजार दे ।।

5 ढाई अक्षर का प्रेम

करें हम दुश्मनी किससे
कोई दुश्मन भी हो अपना
मुहब्बत ने नहीं दिल में
जगह रखी अदावत की

प्रवचनांश

- प्रेम कोई लेन-देन की चीज नहीं है वह तो अनुभूति का आस्वाद है।
- जो गुणों को देखकर प्रेम करेंगे वे दोषो को देखकर द्वेष भी अवश्य करेंगे।
- कामना एक ऐसा विष है जिससे प्रेम की निर्मलता नष्ट होती है।
- प्रेम के सवर्धन के लिए कोई आयोजन नहीं होता और ना ही प्रेम में कुछ चाहने के लिए कोई अभिनय करना होता है।
- प्रेम जब आत्मा से आत्मा का पारदर्शी परदा बनता है तब प्रेम परिमाणात्मक न रहकर गुणात्मक बन जाता है।

5 ढाई अक्षर का प्रेम

प्रेम न तो देखा जाता है, न चखा जाता है, न सूंघा जाता है वह तो मात्र अनुभव किया जा सकता है। प्रेम कोई लेन-देन की भी चीज नहीं है वह तो अनुभूति का आस्वाद है। इसलिए प्रेम के विषय में कुछ भी लिखना बड़ा कठिन है। आप प्रेम पर एक कविता लिख सकते हो परन्तु वह प्रेम नहीं है। अनुभूति की यात्रा को शब्दों से सिंगारना या अक्षरों में उतारना सहज नहीं है।

प्रेम स्थूल नहीं; सूक्ष्म है और सूक्ष्म तत्व को दुनिया नहीं जान सकती। दुनिया के लोग तो राग को समझ सकते हैं पर प्रेम की गहराई को नहीं जान पाते। जो अखंड रहे वह प्रेम है, जो टूट जाए वह प्रेम नहीं हो सकता। जो घटता-बढ़ता रहे वह प्रेम नहीं है और जो महसूस न हो वह भी प्रेम नहीं है। लोग कहते हैं- 'मेरा उनसे बहुत प्रेम था पर अब वह प्रेम टूट गया' तो समझ लेना कि वह प्रेम ही नहीं था। वह प्रेम के नाम पर कुछ और ही तत्व था।

भक्ति-सूत्र में नारद ने प्रेम की यथार्थता बताते हुए मुख्य रुप से दो तत्वों को समझाया है। पहला तत्व है 'गुणरहितं' और दूसरा तत्व है 'कामनारहितं' अर्थात् प्रेम गुणरहित और कामनारहित होता है।

नारद का कथन है कि प्रेम गुणरहित हो अर्थात वह राग, मोह या आसक्तिपूर्ण नहीं हो। प्रेम दोषरहित होता है यह बात तो समझ आती है किन्तु प्रेम गुणरहित होता है यह बात मुश्किल से समझ आती है। प्रेम का आधार गुण

नहीं होना चाहिए। यदि कोई कहे- तुम बहुत गुणों के धारक हो इसलिए मैं तुम से प्रेम करता हूँ यानी तुम बहुत विनीत हो, सेवाभावी हो, बुद्धिमान् हो, उदार हो, संयमी हो, त्यागी हो, समझदार हो, इसलिए मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। कोई कहता है, 'मेरा उससे अत्यंत प्रेम था; उसको मैंने क्या नहीं दिया? परन्तु उसको मेरी कोई कद्र नहीं है अतः अब मेरा उससे प्रेम नहीं है।' कहने का तात्पर्य ऐसा प्रेम, प्रेम नहीं है मात्र यह प्रेमाभास है। जब तक गुण दिखेंगे तभी तक प्रेम टिकेगा, ज्यों ही गुण का आधार प्रकंपित होगा वैसे ही प्रेम नष्ट हो जायेगा। जो टूट गया वह प्रेम कैसे हो सकता है?

प्रेम का आधार गुण नहीं हो सकता क्योंकि संसारी प्राणी के गुण सदा नहीं टिकते। आज एक व्यक्ति में उदारता दिखाई देती है तो कल भी उसमें उदारता होगी ही यह सभव नहीं है। कोई भी गुण हो, कैसा भी गुण हो वह किसीके पास हमेशा रहे यह निश्चित नहीं है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सामने वाले में वह गुण मौजूद तो है किन्तु हमारी दृष्टि बदल जाती है। जब देखने का मनोभाव बदल गया तो वे गुण भी हमें दिखाई नहीं देंगे। जो गुणों को देखकर प्रेम करेंगे वे दोषों को देखकर द्वेष भी अवश्य करेंगे। इसलिए नारद जी ने प्रेम को निर्गुण बनाने की प्रेरणा दी है।

प्रेम का दूसरा तत्व है 'कामनारहितं'। मनुष्य का मन बडा विचित्र है जहाँ मन को गुण नहीं दिखेंगे, वहाँ किसी न किसी कामना को लेकर हम प्रेम करने लग जाते है। अतः नारद जी ने दूसरा तत्व दिया प्रेम कामना रहित होना

चाहिए अन्यथा जब इच्छा पूरी नहीं होगी तब प्रेम नष्ट हो जायेगा। देखा यही जाता है कि इस संसार में प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी आकांक्षा से दूसरों से प्रेम करता है। यह प्रेम नहीं सिर्फ दिखावा है। कामना एक ऐसा विष है जिससे प्रेम की निर्मलता नष्ट होती है। इसलिए नारद जी ने प्रेम को निष्काम बतलाया है।

एक मंदिर में शिवजी की चमत्कारिक प्रतिमा थी। मंदिर जंगल में था। मूर्ति चमत्कारी होने से अपनी कामनाओं की पूर्ति करने लोग आते थे। एक भील ही मात्र ऐसा था जिसका हृदय निष्काम था और वह शंकर भगवान से खूब प्यार करता था।

एक सुबह कोई भक्त सेठ शंकर भगवान की पूजा करके ध्यान लगाकर बैठे थे। सेठ ने देखा भील मुँह मे पानी भर कर लाया और हाथ में जंगल के फूल भी लाया है। उसने पानी से शंकर की मूर्ति को स्नान कराया और जंगली फूलो से उन्हें सजाया फिर हाथ जोड़कर बोला- "कैसे हो प्यारे शंकर जी?"

इतना सुनते ही एक महान् आश्चर्य घटित हुआ; शंकर जी की प्रतिमा प्रत्यक्ष रुप से बोल पड़ी- "भक्त ! तुम कुशल हो न? तुझे जो चाहिए वह मांग लें।"

भील ने भक्ति भाव से गद्‌गद् होकर कहा-" भगवन्! सिवा तुम्हारे मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।" इतना कहकर भील चला गया। यह नजारा देख कर सेठ दग रह गया। मन ही मन सोचने लगा कि मैं तो शंकर जी पर इतने बढिया फल और फूल चढ़ाता हूँ, उन्हें मिठाई भी खिलाता हूँ किन्तु

अभी तक शंकरजी ने मेरी पुत्र प्राप्ति की कामना पूर्ण नहीं की और उस गंवार भील पर भगवान इतने प्रसन्न है कि उससे बात भी करते हैं।

दूसरे दिन जब सेठ मंदिर पहुँचा तो उसने देखा कि भगवान जी की एक आँख नहीं है, कोई उखाड़कर ले गया है। सेठ ने मन में सोचा कि कल बाजार से काँच की आँख लाकर लगा दूंगा। इतने में वह भील आया और जब उसने देखा कि शंकर जी की एक आँख नहीं है तो वह बोला- "भोलेनाथ ! यह क्या हुआ? मेरी तो दो आँखें हैं और तेरी एक? यह कैसे हो सकता है?"

तुरन्त ही भील ने अपने तीर से एक आँख निकाल कर शंकरजी को लगा दी। आँख से खून की धारा बहने लगी। सेठ तो यह सब देखकर घबरा गया। तब प्रतिमा बोली- "देखा, इस भक्त का प्रेम। वह लेने नहीं देने आता है। तुम तो लेने आते हो; देते भी हो तो इस शर्त के साथ कि उससे ज्यादा तुम्हें मिले। मुझे निष्काम प्रेमी ही पसंद है।"

जो प्रेम इस तरह कामनारहित और गुणरहित होगा वह प्रेम विशुद्ध होगा। जो प्रेम विशुद्ध होगा वह निरंतर बढ़ता जायेगा। निरंतर बढनेवाला प्रेम उसे अपने लक्ष्य की ओर तन्मय करेगा। जैसे गाय जंगल में चारा चरने के लिए इधर-उधर घूमती रहती है, घास खाती है, कभी पेड की छाया में बैठकर जुगाली करती है, कभी झरने का निर्मल व शीतल जल पीती है किन्तु इस समस्त क्रिया-कलापों में लगे रहने पर भी उसका मन सतत घर में बंधे बछडे पर ही केन्द्रित रहता है क्योंकि बछडे के प्रति उसके दिल में

जो प्रेम है वह गुण और कामना रहित है।

जो प्रेम गाय और बछड़े की तरह कामनारहित और गुणरहित होगा वह प्रेम विशुद्ध होगा। ऐसा प्रेम करनेवाला बेशर्त होकर बॉटता है तभी वह सम्राट बन जाता है। शर्तों के साथ प्रेम देना बचकानी बात है। प्रेम के संवर्धन के लिए कोई आयोजन नहीं होता और ना ही प्रेम में कुछ चाहने के लिए कोई अभिनय करना होता है।

प्रेम जब आत्मा से आत्मा का पारदर्शी परदा बनता है तब प्रेम परिमाणात्मक न रहकर गुणात्मक बन जाता है। ऐसी स्थिति में पूरी समष्टि से प्रेम हो जाता है। चूंकि हम एक से प्रेम करना नहीं जानते इसलिए विश्वप्रेमी बनना भी कठिन है। जब भी कोई प्रेम करता है वहॉ एक या अनेक का प्रश्न नहीं होता वहाँ सिर्फ प्रेम होता है। जीवन में प्रेम की जरुरत दर्शाते हुए शायर ने लिखा है -

पानी है पर प्यास नहीं तो क्या
अवसर है पर आश नहीं तो क्या ।
पा सकता है इन्सान हर मंजिल
सब कुछ है पर प्रेम नहीं तो क्या ।।

6 जीने का ढंग बदलो

करो ना आग्रह इतना कि किसी का दिल ही टूट जाय
ठोकर दो ना ऐसी कि जिगर का जाम ही फूट जाय
भीतर अरमां व हसरत की वो दुनिया लेके बैठा है
करो ना बेरुखी इतनी जीवन का रस ही सूख जाय

प्रवचनांश

- यदि कोई व्यक्ति किसी एक पक्ष को स्वीकार करने का आग्रह रखेगा तो उसका जीवन दुःख, अशांति और उद्विग्नता से भर जायेगा।
- अपने दृष्टिकोण से सत्य के एक पहलु को देखकर अदृश्य पहलु का खडन करना अधर्म है।
- किसी भी विचार को आग्रह की दृष्टि से न सीचो, न खींचो।
- किसी को कुछ समझाने से पूर्व स्वय को समझो, बात मनवाने से पूर्व बात की गहराई को समझो और आग्रह करने से पूर्व दूसरे के स्थान पर स्वयं को रखकर देखो तो मतभेद, टकराहट और खींचातानी को स्थान नहीं मिलेगा।

6 जीने का ढंग बदलो

मानव जीवन अनेक घटना और दुघर्टनाओं का एक मेला है। इस मेले में अनेक व्यक्तियों के साथ गुजरते हुए कुछ तनाव, टकराव और बिखराव के प्रसंग उपस्थित होते रहते हैं। परिणामतः मनुष्य का मस्तिष्क अनेक प्रश्न, उलझन, समस्या और गलतफहमियों का शिकार बन जाता है। इस तरह की ग्रंथियों से उसका मन बोझिल बना रहता है। यदि चिंतन की गहराई में जाकर इन सारी ग्रंथियों का मूल कारण खोजा जाये तो वह है–आग्रह।

अपने ही सोच-विचार को सच मानकर उसके साथ चिपक जाने का नाम आग्रह है। ऐसी स्थिति में दूसरे के दृष्टिकोण को गलत समझा जाता है, गौण कर दिया जाता है या उनके विचारों का समादर नहीं किया जाता। इस प्रकार आग्रही बनकर व्यक्ति अपने जीवन को तनाव और शिकायतों से भर लेता है।

जिस संसार में हम जीते है वह ससार ही द्वन्द्वात्मक है। यहॉ सारे तत्व प्रतिपक्ष को लिए हुए हैं। वस्तु हो या व्यक्ति, घटना हो या परिस्थिति सभी अपने विरोधी पक्ष के साथ जुड़े हुए हैं। देखा जाता है कि इस पृथ्वी पर फूल भी है तो शूल भी है, पुण्य है तो पाप भी है, सुख भी है तो दुःख भी है, शुभ है तो अशुभ भी है, अमृत भी है तो विष भी है, ऐसे में दोनों पक्षों का सहज स्वीकार करना जरुरी है। यदि कोई व्यक्ति किसी एक पक्ष को स्वीकार करने का आग्रह रखेगा तो उसका जीवन दुःख, अशांति और उद्विग्नता

से भर जायेगा।

जीवन मार्ग पर चलते हुए भाँति-भाँति के लोग मिलते हैं। यह यथार्थ है कि सभी के विचारों की, व्यवहारों की, रुचियों की, आदतों की, संस्कारों की व दृष्टिकोणों की एकरुपता नहीं हो सकती। इसलिये इस जीवन की सच्चाई को झेलने के लिए मनुष्य को अनाग्रही होना निहायत जरुरी है। प्रभु महावीर ने कहा है– इस संसार का प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि जैसा मैं सोचता हूँ, बोलता हूँ, पहनता हूँ वैसा ही सब करें किन्तु ऐसा हो नहीं सकता; क्योंकि सबकी रुचियाँ विरोधी हैं और दृष्टिकोणों में भिन्नता है। एक न्यायाध ीश का दृष्टिकोण अपने घर में और कोर्ट में भिन्न–भिन्न होता है। एक गांव में जाने के लिए पचासों रास्ते हो सकते हैं और एक मकान में प्रवेश पाने के लिए अनेकों दरवाजे हो सकते हैं। एक ही दृश्य को अनेक पहलुओं से नापा जा सकता है।

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों विनम्र एवं सेवाभावी थे। एक दिन गुरु ने परीक्षा हेतु प्रश्न किया– बताओ, ये जगत् कैसा है? एक शिष्य ने कहा– "गुरुदेव! यह जगत बहुत बुरा है, सर्वत्र अंधकार है। आप ही देखें दिन एक और रातें दो यानि दो रातों के बीच में एक ही दिन; एक बार उजाला दो बार अंधेरा; अंधेरा अधिक और प्रकाश कम, ऐसा है यह जगत।"

जब गुरुदेव ने दूसरे शिष्य से पूछा तो वह कहने लगा- "गुरुदेव ! यह जगत तो बहुत अच्छा है, प्रकाश ही प्रकाश है। दो दिन के बीच में एक रात; एक बार अंधेरा और दो

बार उजाला; प्रकाश अधिक और अंधेरा कम ऐसा है यह जगत।"

प्रत्येक वस्तु के अनेक पक्ष और पहलु होते है। हिमालय पर्वत पर पूर्व दिशा की ओर से चढ़नेवाला व्यक्ति जो दृश्य देखेगा उससे कुछ भिन्न दृश्य पश्चिम दिशा की ओर से चढ़नेवाला देखेगा। उत्तर और दक्षिण दिशा से चढ़नेवाला पर्वतारोही हिमालय को अलग-अलग दृश्यों से देखेगा अब यदि चारों पर्वतारोही अपनी-अपनी बात पर अड़कर कहें कि जैसा मैंने देखा है वैसा ही हिमालय है। तुम झूठे हो और मैं सच्चा हूँ तो इस आग्रह का परिणाम विग्रह है। श्रमण महावीर की दृष्टि मे चारों यात्रियों का चारों दिशाओं में सम्मिलित पर्यवेक्षण का सार ही संपूर्ण हिमालय है। अपने दृष्टिकोण से सत्य के एक पहलू को देखकर अदृश्य पहलु का खंडन करना अधर्म है। दूसरों के विचारों को समझने का भी प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि वह भी सत्य हो सकता है। किसी भी विचार को आग्रह की दृष्टि से न सींचो, न खींचो।

एक प्राचीन लोककथा है। किसी गाव में दशहरे का मेला लगा हुआ था। भॉति-भॉति के लोग मेला देखने के लिए दूर-दूर से आये थे। एक पेड के नीचे कुछ लोग इकट्ठे बैठकर चर्चा-वार्ता कर रहे थे। वे सारे लोग भिन्न-भिन्न जाति, पथ और पेशे के थे। इतने में पेड पर एक चिडिया चहचहाने लगी। उसकी चहचहाट को सुनकर वैष्णव बाबा ने कहा- "देखो, यह चिड़िया हमे कह रही है 'राम लक्ष्मण दशरथ, राम लक्षमण दशरथ'।"

यह सुनकर पेड़ के नीचे बैठा हुआ मौलवी बोला- "अरे बाबाजी! चिड़िया क्या जाने राम और लक्ष्मण कौन है? वह तो कह रही है- "अल्लाह ! तेरी कुदरत, अल्लाह ! तेरी कुदरत" यह सुनकर पहलवान बोला- "देखो भाई ! न ये चिडिया राम को जाने ना ही अल्लाह को वह तो कह रही है खाओ मक्खन करो कसरत, खाओ मक्खन करो कसरत।"

इतने में जुलाहा बोल पड़ा- "देखो, ये चिड़िया तो बोल रही है चरखा पुनि चमरख, चरखा पुनि चमरख।" यह सुनते ही माली बोला- "ये चिड़िया कह रही है गाजर मूली अदरख, गाजर मूली अदरख।"

इस तरह सब अपनी-अपनी बात पर अड़ गये और अपनी ही बात को सच मानने और मनवाने का आग्रह करने लगे। आग्रह के कारण गाली-गलौच होने लगा और बात मारपीट तक आगे बढ़ गई तब उस पेड़ के नीचे बैठे हुए एक सिपाही ने देखा कि ये सारे लोग व्यर्थ का प्रपच खड़ा करके झगड़ा कर रहे हैं। अतः उसने अपने हाथ में रहे हुए डंडे से सब के पीठ पर एक-एक डंडा मारा तब वे सारे लोग क्रोधित होकर सिपाही से कहने लगे- "तुम यह क्या कर रहे हो, झगडा तो हमारा आपसी मतभेदों का है, तुम्हारे से तो हमारा कोई मतभेद नहीं है।" तब सिपाही बोला- "यह चिडिया मुझे कह रही है मार डंडा कर मरम्मत, मार डंडा कर मरम्मत।"

मनुष्य यह नहीं देखता कि सत्य क्या है? वह तो अपने मन और मस्तिष्क के अनुसार बात को पकड़ता है, अपने मत से चिपकता है। ऐसी मानसिकता मे वह किसी

की बात को सुनने से पूर्व उस बात को काट देता है। उसका कथन है 'मदियं सत्यं' अर्थात् मेरा ही सत्य है और यहीं से संघर्ष प्रारंभ होता है। हाँलाकि संघर्षों का समाधान सूत्र है- 'सत्यं मदियं' अर्थात जो सत्य है वह मेरा है। चाहे वह सत्य किसी मित्र का हो या शत्रु का, क्षुद्र का हो या महान् का वह ग्रहणीय है।

चाहे आग्रह सत्य का हो या असत्य का, आग्रह मात्र हिंसा है, अधर्म है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति की अपनी नियति है, अपनी स्वतंत्रता है, अपना-अपना यात्रा–पथ है और जीने के अपने ही भिन्न-भिन्न ढंग है। जन्मों-जन्मों से प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही गति से यात्रा कर रहा है, यह बात याद रहे तो आग्रह पनपेगा ही नहीं। अतः किसी को कुछ समझाने से पूर्व स्वयं को समझो। बात मनवाने से पूर्व बात की गहराई को समझो; आग्रह करने से पूर्व दूसरे के स्थान पर स्वयं को रखकर देखो तो मतभेद, टकराहट और खींचातानी को स्थान ही नही मिलेगा। अच्छा निर्णय वही होता है जो वर्तमान के आधार पर हर संभावनाओं को ध्यान में रख कर लिया जाता हैं। किसी भी विचार का आंग्रह रखने से पूर्व यदि अपने विचार का संशोधन किया जायेगा तो विरोधी विचारों के प्रति सम्मान पैदा होगा।

7 अपनी खोज

ढूँढता फिरता हूँ इकबाल अपने आपको
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंजिल हूँ मैं

प्रवचनांश

- इस संसार में सबसे आसान काम है दूसरो को देखना और सबसे कठिन काम है स्वय को देखना।
- जिसने अपनी खोज कर ली उसके लिये जानने को कुछ भी शेष नहीं रहता हॉलाकि जानने के लिये विषय तो बहुत होते हैं किन्तु जानने का कारण शेष नहीं रहता।
- अपनी खोज ही मौलिक है। जिसे खोजना और पाना है वह हमारे भीतर ही है।
- जो स्वयं को जान लेता है वह गलत रास्तों को भी सही बना लेता है।
- इस दुनिया मे एक ही पाप है और वह है अपने को भूल जाना।

7 अपनी खोज

यूनानी दार्शनिक अरस्तू से किसी जिज्ञासु ने दो प्रश्न पूछे। पहला प्रश्न था कि इस संसार में सबसे आसान काम क्या है और दूसरा प्रश्न था कि मनुष्य के लिए सबसे कठिन काम क्या है? अरस्तु ने गंभीरतापूर्वक उत्तर देते हुए कहा- 'इस संसार में सबसे आसान काम है दूसरों को देखना और सबसे कठिन काम है स्वयं को जानना'।

इस धरातल पर प्रत्येक मनुष्य जन्म से लेकर कब्र तक की यात्रा में कुछ न कुछ खोजता ही रहता है। यह खोज आरोपित नहीं है। यह मनुष्य में वैसे ही प्रसुप्त है जैसे बीज में अंकुर छिपा होता है। विज्ञान की खोज भी मनुष्य के इसी खोजी प्रकृति की देन है। सारी जिंदगी खोज में बीता देने के बाद अंत में प्रत्येक व्यक्ति यही अनुभव करता है कि हमने जो भी खोजा है वह सब सारहीन है।

सबसे पहले मनुष्य ने धन खोजा परंतु वह देखता है कि मृत्यु आने पर धन यहीं पडा रह जाता है अतः धन की खोज सारहीन सिद्ध हुई। जो साथ न जा सके वह सार कैसे होगा? यदि यश भी मिल गया तो क्या हुआ? दुनिया के लोगो ने प्रशंसा की और मालाएं पहनाकर तालियाँ पीट दी किन्तु वास्तविकता यह है कि जो आज तालियॉ बजाते हैं वे कल गालियॉ भी देने लग जाते हैं। अपने अतिरिक्त यहॉ कुछ भी सार नहीं है इसलिए स्वयं की खोज ही सारपूर्ण है। जिसने भी अपनी खोज की उसका जीवन सार्थक हो गया। स्वयं को जानना सदा आसान है और दूसरों को जानना सदा कठिन है। हर व्यक्ति दूसरे के लिए यही कहता है कि

तुम्हें समझना टेढ़ा मामला है क्योंकि वह खुद से अनजान है।

उपनिषद में लिखा है- स्वयं को खोज लेना ही मूल्यवान है। जब हमारा चित्त दुःखी होता है तो हम सोचते है इसको जान लो, उसको खोज लो तो दुःख मिट जायेगा। यथार्थ यह है कि कितनी ही खोज कर लो फिर भी विज्ञान की दुनिया में जानने के लिए बहुत कुछ शेष रहता है। जिसने अपनी खोज कर ली उसके लिए जानने को कुछ भी शेष नहीं रहता हाँलाकि जानने के लिए विषय तो बहुत होते हैं किन्तु जानने का कारण शेष नहीं रहता। इसलिए प्रभु महावीर ने कहा- **जे एगं जाणइ ते सव्वं जाणइ** अर्थात् जो एक को जानता है वह सबको जान लेता है।

उपनिषद की एक प्रचलित कथा है। श्वेतकेतु के पिता ने उसे पढ़ने के लिए आश्रम भेजा। श्वेतकेतु प्रखर मेधा व विलक्षण प्रतिभा का धनी था। आश्रम पहुँचकर गुरू-कृपा एवं अपनी पात्रता के आधार से उसने समस्त शास्त्रों को हृदयंगम कर लिया। ब्रह्म के समस्त रहस्यों को गहराई से जान लिया। जब श्वेतकेतु घर लौटा तो उसने अकड़कर घर में प्रवेश किया। पिता ने उसका अहंकारपूर्ण हाव-भाव देखा तो पूछा- "बेटा ! तू सब जानकर आ गया हो ऐसा प्रतीत होता है।"

श्वेतकेतु ने बड़े गर्व से कहा- "पिताश्री ! अठारह शास्त्र मुझे कंठस्थ है। आप मुझे कुछ भी पूछकर देखें, मैं सब परिक्षाओं में समुत्तीर्ण हो चुका हूँ।"

यह सुनकर श्वेतकेतु के पिता ने पूछा- "बेटा ! क्या तूने अपने गुरु से वह भी जाना जिसको जान लेने के बाद सब कुछ जान लिया जाता है।"

पिताश्री के इस प्रकार दार्शनिक प्रश्न पूछने पर श्वेतकेतु सोच में पड़ गया। कुछ देर रुककर बोला- "पिताश्री! मैं तो वे ही चीजें जानकर आया हूँ जिनको जान लेने से उन्हीं को जाना जाता है। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ कि ऐसी क्या चीज है जिसे जान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है।"

तब पिता ने कहा- "बेटा ! तू वापिस आश्रम में जा, तेरा ज्ञान अभी अधूरा है। अपने गुरु से ज्ञान की पूर्णता प्राप्त करके लौटना।"

उसी क्षण श्वेतकेतु ने घर छोड़कर आश्रम की ओर प्रस्थान किया। गुरु के चरणों में पहुँचकर विनम्र भाव से उसने पूछा- "गुरुदेव ! आपने मुझे शास्त्रों का तो सूक्ष्म अध्ययन करा दिया किन्तु मेरे पिताश्री कहते है कि तेरी विद्या अभी अधूरी है। जब तक मैं वह चीज न जान लूँ जिसको जानने के बाद सब कुछ जान लिया जाता है तब तक मैं आपके श्रीचरणों में ही रहूँगा।"

श्वेतकेतु की अंतर्जिज्ञासा को जानकर गुरुदेव ने प्रसन्नतापूर्वक कहा- "वत्स ! वह तो तेरी अपनी आत्मा ही है जिसको जान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है। जैसे ही तू अपनी खोज प्रारम्भ करेगा वैसे ही तू पायेगा कि जानने के लिए अब कुछ भी शेष नहीं है।"

अपनी खोज ही मौलिक है। जिसे खोजना है और पाना है वह हमारे भीतर ही है। अक्सर खोजने में और पाने में बडी विसंगति है। किसी ने सच ही कहा है-

गलत जगह खोजोगे तो कभी नहीं मिलेगा।
ठीक जगह खोजोगे तो पल में मिल जायेगा।।

स्वयं को जानना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है क्योंकि जो हम है वही संसार है। यदि स्वयं को बदलना है तो स्वयं को जानना जरुरी है। चाहे सारे विश्व में घूम लें अंततः हमें स्वयं पर ही लौटना पडता है। जो स्वयं को जान लेता है वह गलत रास्तों को भी सही बना लेता है। जो स्वयं से अनजान है उसके लिए ठीक रास्ते भी गलत मंजिल तक ले जाने वाले बन जाते हैं।

जब अपनी खोज इतनी महत्वपूर्ण हैं तो हम उसे टालते क्यों है? लगता है हम स्वयं को भूलना चाहते हैं। इस दुनिया में एक ही पाप है और वह है अपने को भूल जाना। स्वयं को भूलने का एक ही ढंग है कि दूसरी चीजों को याद करने में लग जाना। जहाँ हजार चीजें याद रहती हो फिर स्वयं को याद करने की जगह नहीं बचती। हम शुतुरमुर्ग की तरह काम कर रहे हैं जो दुश्मन को देखकर रेत में मुँह छिपा लेता हैं और सोच लेता है कि मैं सुरक्षित हूँ। उसका मानना यह है कि जो दिखाई नहीं देता वह है ही नहीं।

इस भूल भरी मान्यता के लिए शुतुरमुर्ग माफ किये भी जा सकते हैं किन्तु इस मनुष्य को माफ नहीं किया जा सकता। जिसे अपनी खोज करनी हो उसे शेष सब ओर से अपनी आँखें बद कर लेनी होगी और मन को इस संकल्प के साथ मोडना होगा कि जब तक मैं स्वय को जान नहीं लेता तब तक सब कुछ जानने का मूल्य भी क्या है? जो अपने से ही दूर निकल जाता है और स्वयं से ही अजनबी हो जाता है उसके जीवन में सदा अधकार रहेगा। इसलिए सभी बुद्ध पुरुषो ने मनुष्य जाति को एक यही संदेश दिया- 'स्वयं के भीतर उतर कर अपनी खोज कर लो।'

8 जिंदगी इम्तिहान लेती है

कल का दिन किसने देखा
आज का दिन खोए क्यों
जिन घड़ियों में हँस सकते हैं
उन घड़ियों में रोये क्यों?

प्रवचनांश

- हर व्यक्ति यहाँ ऐसा महसूस करता है कि जहाँ मैं हूँ वहाँ बड़ा दुःख है और जहाँ मैं नहीं हूँ वहाँ बड़ा सुख है।
- दुःख जीवन का सत्य है, सुख तो केवल घूँघट है। बिना कांटों की चुभन से फूल की कोमलता का स्पर्श भी नहीं हो पायेगा।
- जिंदगी में सुख तो पैसे देने से मिल जाते हैं किन्तु दुःख तो पैसे देने से भी नहीं मिलते।
- जीवन में संघर्ष ही उत्कर्ष का द्वार खोलता है अतः दुःख का क्षण परिवर्तन का क्षण है।
- सुख की अपेक्षा दुःख ज्यादा Positive है। दुःख सुख से अधिक उदात्त और शोधक है जो आत्मा को शुद्ध करता है।

8 ज़िंदगी इम्तिहान लेती है

जीवन के सम्बन्ध में एक चिंतक की कुछ पंक्तियाँ अत्यंत प्रेरणास्पद है-

कभी खुशियों का सामान देती है
कभी गम का विष जाम देती है ।
यातना की युनिवर्सिटी में रखकर
जिंदगी इम्तिहान लेती है ।।

जीवन एक परीक्षा है जिसे प्रत्येक व्यक्ति चाहे-अनचाहे गाहे-बगाहे, मन से या विवशता से, समझ से या भय से देता ही है। इस संसार में हर आदमी के चेहरे पर दुःख ही लिखा है। व्यथा ही उसके जीवन की एकमात्र कथा बन कर रह जाती है। हर व्यक्ति यहाँ ऐसा महसूस करता है कि जहाँ मैं हूँ वहाँ बड़ा दुःख है और जहाँ मैं नहीं हूँ वहाँ बड़ा सुख है। इसका कारण है कि दूसरे के दुःख उसे दिखाई नहीं देते।

एक व्यक्ति भगवान की प्रतिदिन प्रार्थनाकरते हुए एक ही बात को रोज दोहराता था- 'हे भगवन् ! आपने मुझे इतना दुःखी क्यों बनाया? दुनिया के सारे लोग तो सुखी है और मैं अकेला ही दुःखी क्यों हूँ ? आखिर मेरा कसूर क्या है ?

भगवान ने एक दिन उस भक्त से पूछा- "बेटा ! तू चाहता क्या है?" उसने कहा- "भगवन् ! मैं यह नहीं कहता कि मेरे दुःख दूर कर दो, आप तो मात्र इतना कर दो कि मुझे किसी दूसरे का दुःख दे दो। मैं किसीसे भी अपने दुःखों

को बदलने के लिए राजी हूँ किन्तु जो दुःख मुझे दिया है वह मुझे मत दो। मैं जब दूसरों को देखता हूँ तो सब मुझे खुश दिखाई पड़ते हैं। बाजार में देखो तो कुछ लोग हँस रहे हैं, कुछ बातों में तल्लीन है, कुछ सलाहें बांट रहे है, कुछ लोग मनोरंजन में डूबे हुए हैं। इनको देखकर ऐसा लगता है मानो सारी दुनिया में मजा ही मजा है। मैं अकेला ही ऐसा हूँ जो दुःख भोग रहा हूँ।" ठीक यही हाल आज धरती पर जीनेवाले हर मनुष्य का है।
कहा भी है-

दुनिया में आदमी को दुःख कहाँ नहीं ।
वह कौन सी जमीन है जहाँ आसमान नहीं ।।

गौतम बुद्ध ने कहा- 'दुःख जीवन का सत्य है, सुख तो केवल घूँघट है। बिना कांटों की चुभन से फूल की कोमलता का स्पर्श भी नहीं हो पायेगा।' संसार के सुखों से भी दुःखों की शक्ति अपार है। मनुष्य के पास सौ सुख हों और एक दुःख हो तो मनुष्य अपने आपको दुःखी मानता है। यह निश्चित है कि सौ सुख होने पर भी वह अपने आपको सुखी नहीं मानता। 99 सुख पास होते हुए भी वह रोता है.... मात्र एक सुख चला गया इसलिए वह बिलखता है।

भगवान अजितनाथ के भ्राता सगर चक्रवर्ती का पुत्र-सुख चला गया था तब वे कितने बैचेन बन गये थे। श्रीराम का चित्त कैसे विभ्रांत हो गया था, जब लक्ष्मण जी की मृत्यु हो गई थी। जो सुख हमारे पास नहीं, उस सुख का अभाव हमारे पर इतना हावी नहीं हो जाना चाहिए कि हम शून्यमनस्क बन जायें। एक सुख नहीं है तो कोई परवाह

नहीं, दूसरे अनेक सुख है अतः पुण्योदय का उपयोग करें। जो भी दुख है उसके लिये विधेयात्मक दृष्टिकोण अपनाकर उस परीक्षा में सफल बनें।

जीवन में संघर्ष ही उत्कर्ष का द्वार खोलता है अतः दुःख का क्षण परिवर्तन का क्षण है। इसीलिए जीवन में दुःख अनिवार्य है। दुःख की विशेषता यह है कि दुःख हमें जगाता है और हमारी क्षमताओं को भी विकसित करता है। यह सत्य है कि नियति जिसे दुःख देती है उजाला भी उसे ही मिलता है। जिस प्रकार बिजली को चमकने के लिए अंधेरी रात चाहिए और गुलाब के पौधों पर फूल खिलने के लिए कांटे चाहिए; ठीक उसी प्रकार जीवन को सुगधित करने के लिए दुःख भी चाहिए। किसी ने सच ही कहा है- **जिंदगी में सुख तो पैसे देने से मिल जाते हैं किन्तु दुःख तो पैसे देने से भी नहीं मिलते।**

जिदगी में इम्तिहान देने से घबराओ मत। गगन में जब उजाला होनो वाला होता है तब रात्रि का अंधकार एक बार सघन हो जाता है। अधकार की सघनता प्रकाशोदय का शुभ लक्षण है। पृथ्वी पर जब गरमी का उत्ताप अधिक होता है तो वह अच्छी वर्षा के आगमन का शुभ लक्षण माना जाता है। सुख हमारा इतजार कर रहा है बस एक बार दुःख रुपी दरवाजों को पार करना है। अतः दुःख की चोट पडने दो। नगाडा कभी अपने आप नहीं बजता। डंके की चोट पडने पर नगाडे की ध्वनी दूर-दूर तक पहुँचती है। जैसे गिरना उठने की पूर्व भूमिका है, उलझाव सुलझाव की पूर्व स्थिति है उसी प्रकार दुःख भी सुख का द्वार है।

महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद जब श्रीकृष्ण द्वारिका जाने लगे तो माता कुंती ने उनसे दुःख का वरदान मांगते हुए कहा था-

आपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र-तत्र जगद्गुरोः ।
भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भव दर्शनम् ।।

अर्थात् हे भगवन् ! मेरे जीवन में थोड़ा दुःख हर समय बना रहे ताकि आपके परम-सत्य के दर्शन में मेरा ध्यान सतत बना रहेगा। जब जिंदगी में चारों तरफ सुख ही सुख होता है तब मनुष्य प्रमादी बन जाता है। पाश्चात्य विद्वान् Emerson ने कहा है- जीवन की वास्तविकता को समझने के लिए एक बार दुःखों की अग्नि में तपना आवश्यक है।

एक किसान परमात्मा से बहुत परेशान हो गया। कभी वर्षा अधिक हो तो कभी धूप अधिक, कभी बाढ तो कभी सूखा; कभी ओले गिर जाय तो कभी पाला पड जाये जिससे फसलें खराब हो जाती थी। आखिर एक दिन उसने परमात्मा से कहा- "भगवन ! मैं तो आपकी लीला से परेशान हो गया हूँ, एक बार मुझे मौका दो मैं जैसा चाहूँ वैसा मौसम हो जाय तो दुनिया को धन-धान्य से भर दूँगा।"

परमात्मा ने कहा- "ठीक है किसान ! एक साल तेरी मर्जी से सब कुछ होगा मैं दूर रहूँगा।" किसान ने जब धूप चाही तब धूप जब जल चाहा तब जल, जितना चाहा उतना मिला। किसान मागता रहा और बडा प्रसन्न होता रहा क्योंकि गेहूँ कि बाले ऐसी हो गई जैसे बड़े-बडे वृक्ष हो। यह देखकर किसान बहुत प्रसन्न था लेकिन जब फसलें

काटी तो छाती पर हाथ रख कर बैठ गया। गेहूँ भीतर थे ही नहीं, बालें ही बालें थी। किसान बडा दु:खी हुआ और कहने लगा कि परमात्मा ये क्या हुआ?

परमात्मा ने कहा- भोले किसान ! इस गेहूँ की फसल को संघर्ष, तूफान व प्रतिकूलता का तूने कोई मौका ही नहीं दिया तो इनके प्राण निर्मित नहीं हो सके। ये बालें बड़ी तो अवश्य हो गई लेकिन भीतर से पोली है। दु:ख और संघर्षण से ही ऊर्जा-बल निर्मित और संग्रहित होता है।"

सुख की अपेक्षा दु:ख ज्यादा Positive है। दु:ख सुख से अधिक उदात्त और शोधक है जो आत्मा को शुद्ध करता है। फल की अपेक्षा कांटा अधिक मूल्यवान है। यदि गौर से देखा जाय तो सभी जानते हैं कि फूल का सिर्फ स्पर्श हो सकता है पर कांटा तो प्रवेश कर जाता है। दूसरी बात फूल क्षण भर के लिए जीवित है जबकि कांटा जिंदगी भर के लिए होता है। अत: दु:ख कुदरत का सात्विक दान है। किसी शायर ने भी लिखा है-

जिंदगी में अगर कोई गम न हो
तो जिंदगी का मजा नहीं मिलता ।
राह आसान हो तो राहरौ को
गुमराही का मजा नहीं मिलता ।।

9 मनुष्य जन्म का मूल्य

जीवन एक अन्तर्देशीय लिफाफा है
एक दो तीन मोड़ के बाद पोस्ट हो जाता है
जो जीवन के मूल्य को समझता है
वह व्यक्ति संसार में मंजिल पर पहुँच जाता है

प्रवचनांश

- मनुष्य किसी भी प्रकार की निम्न से निम्नतम और श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम यात्रा करने में पूर्ण स्वतंत्र हैं।
- देवताओं को भी यदि मोक्ष चाहिए तो मनुष्य जन्म को धारण करना होगा।
- मनुष्य का यह परम सौभाग्य है कि वह परमात्मा पद को प्राप्त करने की साधना कर सकता है।
- यह जीवन तो सुवर्ण-मिट्टी के समान है इसमें से सुवर्ण के अंश को और मिट्टी के अंश को अलग करना इसीमें जीवन की कृतार्थता, पूर्णता और सफलता है।
- जीवन के परम मूल्य जो मिलते तो मुश्किल से हैं किन्तु खो बड़ी जल्दी जाते हैं।

9 मनुष्य जन्म का मूल्य

इस संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य है। उसकी श्रेष्ठता और महत्ता का कारण उसकी स्वतंत्रता है। पशु-पक्षी और पेड-पौधे तो परतत्र हैं क्योंकि उन्हे अपनी चेतना का बोध नहीं है। सिर्फ मनुष्य में ही वह अपार क्षमता है कि वह जो चाहे बन सकता है। मनुष्य जन्म तो मंदिर की सीढ़ी की भांति है जो दोनों दिशाओ में गति करता है। सीढ़ी का प्रयोजन इतना ही है कि हम मंदिर में पहुँच जाय, द्वार पर ही बैठे न रहें।

मनुष्य किसी भी प्रकार की निम्न से निम्नतम ओर श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम की यात्रा करने में पूर्ण स्वतत्र है। यह स्वतत्रता मनुष्य का दुर्भाग्य भी है और सौभाग्य भी है क्योंकि मनुष्य उठे तो देवताओं से उपर उठ सकता है और गिरे तो पशुओ से भी नीचे गिर जाता है इसलिए श्रमण भगवान महावीर ने एक अपूर्व बात कही कि देवताओं को भी यदि मोक्ष चाहिए तो मनुष्य जन्म को धारण करना होगा। मनुष्य चाहे तो राम भी बन सकता है और रावण भी; महावीर भी बन सकता है ओर गोशालक भी, कस भी बन सकता है और कृष्ण भी। यह सब बनना मनुष्य की इच्छा एव जीवन जीने की प्रक्रिया पर आधारित है।

मनुष्य का यह परम सौभाग्य है कि वह परमात्मा पद को प्राप्त करने की साधना कर सकता है। मनुष्य रोते-रोते जन्मे और सोते-सोते मर जाय तो इस मानव जीवन का कोई महत्व नही। यदि मनुष्य मुट्ठी बाधकर जन्मे और मुट्ठी खाली करके चल बसे तो इस स्थिति मे जानना कि मानव

जीवन को यूं ही गंवाया। यह जीवन तो सुवर्ण मिट्टी के समान है। इसमें सुवर्ण के अंश को और मिट्टी के अंश को अलग करना इसी मे जीवन की कृतार्थता, पूर्णता और सफलता है।

अक्सर जीवन मे ऐसा होता हैं कि जिन बहुमूल्य चीजों को पाने के लिए हम श्रम करते हैं उन्हे पा लेने के बाद उनका मूल्यांकन नहीं कर पाते। जीवन के सामान्य धरातल पर भी यह मानवीय-वृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यदि कोई व्यक्ति धन पाने की तीव्र आकाक्षा करता है तो धन पा लेने के बाद उसका रस समाप्त हो जाता है। जैसे एक चित्रकार चित्र बनाता है तो कितने लगन और श्रम से बनाता है। उस समय वह सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास सब कुछ भूल जाता है। लेकिन चित्र बन जाने के बाद उसे वह सरकाकर रख देता है क्योकि उसका रस अब चित्र में नहीं रहा। यही कथा जीवन के सारे कलाकारों की है। यही व्यथा हर मानव-मन की भी है। कहते हैं कविता लिखकर फिर न गुनगुनाओगे तो चलेगा, मूर्ति बनाकर मूर्ति को कोने में रख दोगे तो चलेगा, चित्र बनाकर कूडे मे डाल दोगे तो चलेगा लेकिन यह जीवन बहुत मूल्यवान है, इसे पा लेने के बाद इसके मूल्य को भूल जाना हमारी मूर्खता है। किसी रत्न की अवहेलना मात्र इसलिए नही की जाती कि वह हमे प्राप्त हो गया है।

एक कुंभकार था। उसके जीवन का प्रतिदिन एक निश्चित क्रम था कि प्रातः काल जंगल मे जाना और गधे पर मिट्टी लादकर अपने घर लौटना। यह गधा ही उसके आजीविका में सहयोगी था अत वह गधे का खूब ख्याल रखता था।

एक सुबह जब वह जंगल की ओर जा रहा था तो

उसे रास्ते में चमकता हुआ एक गोल पत्थर दिखाई दिया। उसकी चमकती प्रभा से वह इतना आकर्षित हुआ कि उसने उस चमकीले पत्थर को गधे के गले में बांध दिया। वह अपने घर की ओर लौट रहा था कि मार्ग में उसे एक जौहरी मिल गया। जो इस चमकीले पत्थर के भीतर रही हुई सभावनाओं को देखकर दग रह गया। शीघ्र ही उसने कुंभकार से कहा,- "भाई ! यह पत्थर मैं तुमसे खरीदना चाहता हूँ।"

यह सुनकर कुभकार झट से बोल पड़ा, "हाँ जी एक रूपये में ले लो।" तब जौहरी बोला- "भाई ! यह पत्थर तो सिर्फ आठ आने का है। यदि तुम चाहो तो मुझे आठ आने मे दे दो।" कुभकार उस पत्थर का मूल्य एक रुपये से कम लेना नहीं चाहता था अतः उसने साफ इन्कार कर दिया। कुभकार अपने घर की ओर चल पड़ा।

कुछ देर चलने के बाद उस कुभकार को एक दूसरा जौहरी मिल गया। उसने कुभकार की चाहत के अनुसार एक रुपया देकर उसे खरीद लिया। कुभकार अपने घर पहुॅचा।

थोड़ी देर बाद वह पहला जौहरी ढूँढते-ढूॅढते उस कुभकार के घर पहुॅचा तो देखा कि अब गधे के गले में वह चमकता हुआ पत्थर ही नही है। वह बडा हैरान हो गया और उसने उस पत्थर का मूल्य बताते हुए कहा-"पागल। यह तूने क्या कर दिया। लाखो रुपये की कीमत वाले उस हीरे को एक रुपये मे बेचकर तूने बड़ी नादानी की है।"

इतना सुनते ही वह कुभकार बोला,- "भैया ! मैं तो पागल हूॅ ही परन्तु तुम तो महापागल हो। तुम्हे तो असली मूल्य का पता था फिर भी तुमने सिर्फ आठ आने के पीछे

लाखों का हीरा गँवा दिया।"

हम सब उस जौहरी की भाँति हैं जो मनुष्य जन्म रुपी हीरे की दुर्लभता और महत्ता को जानते हुए भी उसे व्यर्थ में खो देता है। संत सूरदास जी ने एक बड़ा सुन्दर पद गाया है- **"नहि एसो जन्म बार-बार"** और इन्हीं भावों को महात्मा आनंदघन जी ने एक पद में लिखा है- **"अवसर बेर-बेर नहीं आवे"**

इसलिए हमारे भारतीय संतों ने सूत्र दिया **'चेत-चेत नर चेत'**। मूल्यांकन-दृष्टि के अभाव में मनुष्य सजग नहीं हो पाता और दुर्लभ वस्तु निर्मूल्य हो जाती है। जैसे किसी बच्चे के हाथ में किसी ने सौ रुपये का नोट थमा दिया हो तो वह उसे फाड़ देगा या उसे मुँह में डालकर चुसेगा या फेंक देगा; क्योंकि उस बालक की दृष्टि में वह नोट मात्र एक कागज है।

यह जन्म हीरे जैसा है, चूके तो फिर पूरा चक्र घूमेगा। यही बात तीर्थंकर महावीर ने कही कि मनुष्य का जन्म सुबह की तरह है जो रात्रि का सघन अंधकार व्यतीत होने के बाद मिला है अतः इसका मूल्यांकन करे। इस बात को सदैव याद रखना कि जीवन के परम मूल्य जो मिलते तो मुश्किल से है किन्तु खो बडी जल्दी जाते हैं। किसी चिंतक ने चार पंक्तियाँ लिखी है-

सांस का पिंजरा किसी दिन टूट जायेगा,
हर मुसाफिर राह में ही छूट जायेगा ।
इसलिए जिंदगी की कीमत समझो दोस्तो !
क्या पता जीवन का घट कब फूट जायेगा ।।

10 मृत्यु - बोध

किसके रोने से कौन रुका है कभी यहाँ
जाने को ही सब आये हैं सब जायेंगे
चलने की ही तो तैयारी बस जीवन है
कुछ सुबह गये कुछ डेरा शाम उठायेंगे।

प्रवचनांश

- जन्म के समय सभी कोरे कागज की भाँति पैदा होते हैं किन्तु मृत्यु के क्षण में सारी कथा उस पर लिखी जाती है।
- किसी की सड़क से गुजरती अर्थी को देखकर यह मत कहना कि बेचारा चल बसा अपितु उस अर्थी को देखकर सोचना कि किसी दिन मेरी अर्थी भी इसी तरह से गुजरेगी। उस अर्थी से अपने मृत्यु का बोध ले लेना क्योकि दूसरे की मौत हमारे लिए चुनौती है।
- जीवन का हर दिन आखिरी दिन है ऐसा सोचकर भीतर की तैयारी करनी चाहिए।
- मृत्यु के स्मरण से मन पापो से बचता है और वैराग्य का पौधा पनपता है।

10 मृत्यु - बोध

जीवन का एक छोर है जन्म और दूसरा है मृत्यु। जन्म के साथ मृत्यु का अनन्य सम्बन्ध है। जिस क्षण पैदा हुए उसी क्षण से मृत्यु की यात्रा भी प्रारम्भ हो जाती है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है- **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः** अर्थात् जिसका भी जन्म होता है उसकी मृत्यु निश्चित रुप से होती है।

जन्म के समय सभी कोरे कागज की भाँति पैदा होते हैं किन्तु मृत्यु के क्षण में सारी कथा उस पर लिखी जाती है। महापुरूषो ने मृत्यु को एक शिक्षण कहा है। जैसे कोई बच्चा School में जाता हो और एक ही Class में Fail होता रहे तो बार-बार उसी Class में भेज दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार मृत्यु भी एक महाशिक्षण है; जब तक हम अमरत्व को प्राप्त नहीं कर लेंगे तब तक बार-बार इस संसार में जन्म लेते रहेगे।

जीवन के रहते हुए यदि मृत्यु का बोध स्पष्ट हो जाय तो अमरत्व को पाना संभव है। हर क्षण मृत्यु का स्मरण करने से मृत्यु-बोध हमारे जीवन में अंकुरित हो सकता है। जैसे चौगाने में लकडियों के सहारे बंधी रस्सी पर नट नाचता है, ढोल की आवाज के साथ अपने पाँव बढ़ाता है और अलग-अलग करतब भी दिखाता है। उस समय चारों ओर से लोग उसकी प्रशंसा करते है, और तालियाँ बजाते हैं और पैसे फेंकते है। इतना कुछ होते हुए भी उसका मन सिर्फ रस्सी पर ही लगा हुआ है। क्योंकि वह जानता है तनिक सी असावधानी मृत्यु को निमंत्रित करेगी। इस बात

का सतत ध्यान रहे कि मृत्यु प्रतिपल हमारे सामने खड़ी है तो जीवन का रुप बदलते देर नहीं लगती। किसी शायर की पंक्तियों में इस सत्य को उजागर किया गया है-

जब तक मौत नजर नहीं आती।
तब तक जिंदगी राह पर नहीं आती।।

महाराष्ट्र के एक महान् संत हुए है- रामदास। वे हर घड़ी धर्मध्यान और प्रभु चर्चा में लीन रहते थे। मानव मात्र को उत्कर्ष का मार्ग समझाते थे और उस पर चलने की प्रेरणा देते थे। एक दिन एक जिज्ञासु उनके चरणों में आया और बोला- "महाराज ! आप बडे महान् हैं, कितनी अच्छी और सच्ची धर्म की बातें सुनाते हैं अतः मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि क्या आपके मन में कभी कोई विकार नहीं आता?"

संत रामदास ने उसकी जिज्ञासा को जानकर गंभीरतापूर्वक कहा- "सुनो भाई ! तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर तो मैं बाद में दूंगा परन्तु एक बात बता देना चाहता हूँ कि आज से ठीक एक महीने बाद, इसी समय तुम्हारी मृत्यु होने वाली है।"

सत के इन वचनो को सुनकर उस आदमी के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई। उसका शरीर थर-थर काँपने लगा। जैसे-तैसे वह घर पहुँचा। तत्काल उसने घर के सभी सदस्यों को बुलाया और आँखों से ऑसू बहाते हुए सत की भविष्यवाणी बता दी। सुनकर घर के लोग स्तब्ध रह गये और यह सोचकर रोने लगे कि इतने महान संत की बात झूठी तो नही हो सकती।

उस जिज्ञासु को मृत्यु के आगमन का इतना गहरा

आघात लगा कि वह बीमार हो गया। एक-एक दिन गिनने लगा। उसके सम्बन्धी, मित्र और मिलने वाले आकर उसे सान्त्वना देने लगे किन्तु उसे चैन कहाँ ! ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे थे, उसकी वेदना बढ़ती जा रही थी।

आखिर वह दिन आ ही गया। लोगों की भीड़ जमा हो गई। सब हैरान और दुःखी थे। इतने में स्वामी रामदास आ गये भीड़ को देखकर उन्होंने पूछा- "वत्स ! यह सब क्या हो रहा है?"

जिज्ञासु ने हताश होकर कहा- "महात्मन् ! क्या आप भूल गये? आपने कहा था, एक महीने बाद मेरी मौत होने वाली है। आज उसका आखिरी दिन है और वह घड़ी अब आने ही वाली है।"

यह सुनकर संत रामदास मुस्कराये और मधुर स्वर में उन्होंने पूछा- "पहले यह बताओ कि इस एक महीने में तुम्हारे मन में कोई विकार पैदा हुआ?"

आश्चर्यचकित होकर जिज्ञासु ने कहा- "स्वामीजी! मेरे सामने तो हर घडी मौत खड़ी है फिर विकार कहाँ से आता।"

सत रामदास ने हँसकर कहा- "अरे पगले ! तेरी मौत नहीं आनेवाली; मैंने तो तुम्हारे सवाल का जवाब दिया था। जैसे तुम्हारे सामने एक महीने तक मौत खडी रही, वैसे ही मेरी हर धड़कन के साथ ईश्वर का स्मरण रहता है।" ऐसा बोध-पाठ मिलने के बाद जिज्ञासु का जीवन ही बदल गया।

मृत्यु का सतत बोध हमें जीवन की गहराईयों में ले जाता है। दूसरे की मृत्यु से अपनी मृत्यु का बोध ले सकते हैं। क्योंकि हर पीले पत्ते का टूटना हमारी

मौत है; हर पानी के बुलबुले का फूटना हमारी मौत है; हर शाम सूरज का ढलना हमारी मौत है; हर चिता का जलना हमारी मौत है; हर अर्थी का उठना हमारी मौत है- अगर हम चिंतन कर सके तो.... लेकिन आदमी बड़ा बेईमान है। यदि पड़ौस में किसी की मृत्यु हो जाय तो लोग कहते है बेचारा चला गया। इस लहजे में यह बात कही जाती है जैसे हम तो अमर रहने वाले हैं। इसलिए किसी की सड़क से गुजरती अर्थी को देखकर यह मत कहना कि बेचारा चल बसा अपितु उस अर्थी को देखकर सोचना कि किसी दिन मेरी अर्थी भी इस तरह से गुजरेगी। उस अर्थी से अपनी मृत्यु का बोध ले लेना क्योंकि दूसरे की मौत हमारे लिए एक चुनौती है।

साधारणतयाः मृत्यु से अधिकांश व्यक्ति भयभीत रहते है। वे भूल जाते हैं कि मृत्यु शत्रु नहीं, परम मित्र है। वह हमारे सिर पर बंधी एक घंटी है, जो हर घडी यह चेतावनी देती है कि 'सावधान रहो'। एक-एक क्षण का उपयोग उस साधना मे करो जो मानव जीवन को कृतार्थ करती है। इसी लक्ष्य को सामने रखकर उर्दू के मशहूर शायर नजीर ने कहा था-

सब ठाठ पडा रह जायेगा ।
जब लाद चलेगा बंजारा ।।

यह जीवन एक रैन-बसेरा, एक नदी-नाव संयोग। हम बाहर की व्यवस्थाएँ जुटा लेते हैं और जीने के सारे ठाठ-बाट से समय को व्यतीत कर लेते है। मृत्यु अतिथि है जो आज भी आ सकती है। वह बुढापे मे या जवानी मे ही आये ऐसा कोई जरुरी नहीं है। वह तो कभी भी और कही भी आ सकती है। अतः जीवन का हर दिन आखिरी

दिन है ऐसा सोचकर भीतर की तैयारी करनी चाहिए। जो शुभ है, पुण्य है, भला है, कल्याणकारी है उसे करने में विलम्ब न कर धर्माराधन करना जीवन का असली बीमा करवाना है।

दुनिया में दो तरह की शिक्षाएँ होनी चाहिए। एक जो आजकल दी जाती है- कैसे जीओ, कैसे आजीविका अर्जन करो, कैसे धन का संग्रह करो, कैसे पद-प्रतिष्ठा पाओ अर्थात ऐसा शिक्षा का क्रम कि जिसमें जीवन का आयोजन किया जाता है। परन्तु दूसरी शिक्षा इससे भी महत्वपूर्ण है वह है कैसे मृत्यु का स्वीकार करे, कैसे किसी प्रिय की मृत्यु के क्षण में जाग सको। प्राचीन काल में दोनों शिक्षाएँ उपलब्ध थी परन्तु आज दुनिया में एक ही प्रकार की शिक्षा है। वेदों में इसीलिए जीवन के चार हिस्से किए गये है। पच्चीस वर्ष तक विद्यार्थी का जीवन ब्रह्मचर्य का जीवन है। गुरु के समीप बैठकर जीने की शैली सीखनी है फिर पच्चीस वर्ष गृहस्थाश्रम में रहकर जो सीखा है उसका प्रयोग करना है। जब पचास वर्ष के हो गये तब उनके बच्चे गुरुकुल से लौटेंगे तब वानप्रस्थाश्रम प्रारंभ होता है। वानप्रस्थ यानि जंगल की ओर मुँह कर लेना। इसका अर्थ है अभी जंगल गये नहीं और घर छोड़ा नहीं लेकिन घर की तरफ पीठ और जंगल की तरफ मुँह कर लेना। शेष पच्चीस वर्ष सन्यासाश्रम के जहाँ मृत्यु की तैयारी करनी है। मृत्यु के शास्त्र को सुबह शाम पढो क्योंकि मृत्यु बोध से ही जीवन सवरता है। मृत्यु के स्मरण से ही मन पापों से बचता है और वैराग्य का पौधा पनपता है। मृत्यु का स्वाध्याय जिदगी का असली स्वाध्याय है।

11 दुःख - मुक्ति

अभाव आकाश का नहीं उड़नेवाली पांखों का है
अभाव प्रकाश का नहीं देखनेवाली आँखों का है
भरे समंदर के बीच रहकर भी मीन प्यासी क्यों ?
यह प्रश्न सिर्फ मेरा नहीं हजारों लाखों का है

प्रवचनांश

- यहाँ हर सुख के दरवाजे पर दुःख लिखा होता है।
- बडे मजे की बात तो यह है कि दुःख हम छोडना चाहते हैं पर दुःख हमें कभी नहीं छोड़ता और सुख को पकडना चहते हैं किन्तु वह पकड में नहीं आता।
- कोई भी कष्ट दुःख नहीं है इसलिए सारे कष्ट मिट जाते हैं। कष्ट और दुःख में बहुत बड़ा फासला है।
- दुःख का मूल कारण आत्म-अज्ञान है अर्थात् स्वयं को न जानना ही दुःख है।
- जब भी दृष्टि बाहर से हटकर भीतर प्रतिष्ठित हो जायेगी तब सारे दुःख स्वतः समाप्त हो जायेगे।

11 दुःख - मुक्ति

किसी ने प्रश्न पूछा था-दुःख से मुक्ति कैसे मिले?

दुख से मुक्ति मिलना सहज तो नहीं है, लेकिन असंभव भी नहीं है। दुःख से मुक्ति हो सकती है, सुख को उपलब्ध हुआ जा सकता है। लेकिन इससे पहले कि दुःख से मुक्त कैसे हो, सुख को उपलब्ध कैसे हो, यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि दुःख क्या है और सुख क्या है?

मन को सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है; परिणाम स्वरुप हम सुख को पकडना चाहते हैं और पाते हमेशा दुःख ही है। ऐसा लगता है कि यहाँ हर सुख के दरवाजे पर दुःख लिखा होता है। सुख को देखकर द्वार खटखटाते हैं और भीतर प्रवेश करते ही दुःख मिलता है। यह जीवन की सबसे बड़ी विसंगति है कि हम चाहते हीरों को हैं किन्तु पत्थर ही हाथ लगते हैं, चाहते बहारों को हैं परन्तु मिलता पतझड ही है, चाहत तो किनारों की है किन्तु मझधार में डूब जाते हैं। बडे मजे की बात तो यह है कि दुःख को हम छोडना चाहते हैं पर दुःख हमें कभी नहीं छोड़ता और सुख को पकडना चाहते हैं किन्तु वह पकड में नहीं आता।

यह जीवन दुःख पाने के लिये नहीं मिला है और ना ही मनुष्य दुःख के लिये पैदा हुआ है। दुःख जीवन की सार्थकता नहीं हो सकता और ना ही जीवन का

अन्त हो सकता है। दु:ख तो इसलिए है कि जीवन उसे उपलब्ध नहीं कर पाता जिसे उपलब्ध करने के लिए वह मिला है। जो मनुष्य की अंतर्निहित संभावना है उसे न पाने से सब दु:खी होते है।

'मनुष्य दु:खी क्यों है?' इस प्रश्न का जितना चिंतन-मनन हुआ है उतना शायद ही किसी अन्य विषय का हुआ होगा। इस पर हजारों ग्रन्थ लिखे जा चुके है और इसके अनेक उत्तर दिये जा चुके है फिर भी सारे धर्म इसी प्रश्न के ऊहापोह में संलग्न है। इसलिए आज भी यह प्रश्न एक अमिट और चिरंतन प्रश्न बना हुआ है।

वस्तुत. जीवन में दु:ख किसी बाह्य अभावों के कारण नहीं होता। अभावों के कारण तो कष्ट महसूस होता है किन्तु स्मरण रहे कोई भी कष्ट दु:ख नहीं है इसलिए सारे कष्ट मिट जाते हैं। कष्ट और दु:ख में बहुत बडा फासला है। जैसे यदि हाथ-पैरों में या सिर में दर्द हो तो दवा लेने से ठीक हो जाता है। इस दर्द का होना दु:ख नहीं है यह तो कष्ट है। कष्ट को तो विज्ञान ठीक कर देता है। लेकिन शरीर में बीमारी ना हो, हाथ-पैर मे दर्द नही हो और सब तरह की सुविधा हो तो क्या आप महसूस करते है कि आपके भीतर का दु:ख समाप्त हो गया ? 'नहीं' अर्थात् कष्ट नही हो तब भी दु:ख नहीं मिटता।

अक्सर ऐसा होता है कि जब कष्ट का अभाव होता है तो उसे हम सुख समझ लेते है। जिस प्रकार पैर में

कांटा गड़ा हो तो कष्ट का अनुभव होता है और न गड़ा हो तो कोई सुख नहीं मिलता; न हम आसपास जाकर कोई खबर करते हैं कि आज मेरे पैर में कांटा नहीं लगा है या आज मेरे सिर मे दर्द नहीं है अतः मैं बहुत सुखी हूँ। सार इतना ही है कि मन को जिस चीज का पता नहीं हो उसका कोई कष्ट हमें महसूस नहीं होता।

जीवन में व्यक्ति दुःख का अनुभव तो करता है पर उसके मूल कारण को नहीं जानता। यदि किसी वृक्ष का मूल विकृत हो तो उसके पत्ते भी विकृत होते हैं और उस पर फूल भी नहीं खिल पाते। दुःख का मूल कारण आत्म-अज्ञान है अर्थात् स्वयं को न जानना ही दुःख है।

एक कम्बोडियन बौद्ध कथा है। कम्बोज के सम्राट की राजसभा में एक बौद्ध भिक्षुक आया। भिक्षुक ने सम्राट से निवेदन करते हुए कहा- "सम्राट् ! मैं त्रिपिटकाचार्य हूँ। मैने पंद्रह वर्ष तक अध्ययन करके धर्म के गूढ़ तत्वों का रहस्य जाना है तथा सारे बौद्ध जगत का तीर्थाटन भी किया है। अब मेरी प्रबल भावना यह है कि कम्बोज देश का शासन भगवान तथागत के आदेशो के अनुसार चले; अतः इस संदर्भ में मैं आपके राज्य का धर्मगुरु बनना चाहता हूँ।"

कम्बोज का सम्राट भी एक कुशल धर्मज्ञ था। भिक्षुक की प्रबल भावना को जानकर मुस्कराते हुए सम्राट् ने कहा- "भिक्षुक ! आपकी सदिच्छा मगलमयी है किन्तु मैं चाहता हूँ अभी आप एक बार सारे धर्मग्रन्थों का पुनः

पारायण किजिये।"

यह सुनकर भिक्षुक का चेहरा क्रोध से लाल हो गया और वह अपने क्रोध की ज्वाला को भीतर ही दबाकर तमतमाते हुए वहाँ से लौट आया। आश्रम मे पहुँचकर उसने ठंडे दिमाग से सोचा कि सम्राट को रुष्ट करने से क्या लाभ होगा? इससे तो अच्छा है कि एक बार पुनः धर्म ग्रन्थों का पारायण कर लिया जाए।

इस प्रकार भिक्षुक जब एक वर्ष के बाद समस्त धर्म-शास्त्रों का अध्ययन कर जब सम्राट के दरबार में पहुँचा तो सम्राट ने कहा- "भिक्षुक ! मेरी इच्छा है कि उन ग्रन्थों का आप एक बार फिर से गहरा अध्ययन कर लीजिए।" यह सुनकर वह अत्यन्त निराश होकर आश्रम लौट आया।

जब भिक्षुक ने समस्त धर्मग्रन्थों का सूक्ष्म और गहरा अध्ययन प्रारंभ किया तो एक दिन उसके भीतर का आत्म-दीप प्रकाशित हो गया। सुप्त चेतना जागृत हो गई। जब एक वर्ष बीत जाने पर भी भिक्षुक सम्राट की सभा में नहीं पहुँचा तो सम्राट स्वयं चलकर उनके द्वार पर पहुँचे और कहा- "भिक्षुक ! अब आप कम्बोज देश में पधारकर धर्माचार्य का आसन सुशोभित कीजिये।"

भिक्षुक ने कहा-"सम्राट् ! अब मै सुख के सिंहासन पर बैठ गया हूँ। आपकी प्रेरणा से अब मुझे भीतर की सपदा प्राप्त हो चुकी है मैंने जान लिया सुख का आधार सत्ता नही, सत्य है। सुख कभी आकाश से

नहीं टपकता और न ही पाताल से प्रकट होता है। वह तो आत्मा से प्रादुर्भूत सहज उपलब्धि है। जैसे फूल की सुगन्ध फूल में है, शक्कर की मिठास शक्कर में है, दीपक का प्रकाश दीपक में है। वैसे ही आत्मा का सुख आत्मा में है। हमारी आत्मा आनंद का अनंत सागर है; सुख का अक्षय भण्डार है, निराकुलता व शान्ति का असीम कोष है। जब तक मैं इस सत्य को नहीं जानता था तब तक भटकता रहा और विचारों के शोरगुल से दुःखी होता रहा। परन्तु अब मैंने अनुभव कर लिया है कि जो स्वयं को जान लेता है वह समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।"

चरम तीर्थंकर महावीर ने अपनी अन्तिम वाणी उत्तराध्ययन सूत्र में फरमाया है- **"जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख संभवा"** अर्थात् दुनिया में जितने भी दुःख हैं उन सबका मूल कारण अविद्या यानि अज्ञान ही है। हमने कभी अपने आपको नहीं जाना इसलिए सारे दुःख पैदा हुए है। हमारी चेतना धन में, मकान में, दुकान में, परिवार में, बाजार में, सत्ता में, प्रतिष्ठा और प्रपंच में फैली हुई है। जब दृष्टि बाहर से हटकर भीतर प्रतिष्ठित हो जायेगी तब सारे दुःख स्वतः समाप्त हो जायेंगे। किसी शायर ने भी कहा है-

दूसरों से बहुत आसान है मिलना साकी ।
अपनी हस्ती से मुलाकात बड़ी मुश्किल है ।।

12 सत्संग : रामबाण औषधि

कबीरा संगत साधु की
ज्यों गंधी को वास
जो कुछ गंधी दे नहीं
तो भी वास सुवास

प्रवचनांश

- एक व्यक्ति के निर्माण में 60% से भी ज्यादा प्रभाव वातावरण का होता है और 40% आनुवंशिकता का प्रभाव रहता है।
- जिस सगति से सत्यता, सात्विकता और पवित्रता की प्रेरणा मिलती हो और जिससे हमारा जीवन-पथ प्रशस्त होता हो वह सत्सग है।
- बुरी संगत में रहकर आदमी बुरा बने या न बने किन्तु बुरा कहलाने लगता है।
- अच्छे आदमियो का संग चंदन जैसा है, जब तक सग मे रहेगा तब तक तो खुशबू मिलेगी ही और संग छूटने के बाद भी अच्छे विचारों की सुगंध से जिंदगी तरोताजा हो जायेगी।

12 सत्संग : रामबाण औषधि

मनुष्य अनुकरणप्रिय प्राणी है। अनुकरण करने की उसमें सहज आदत है। वह जैसा बिम्ब देखता है अपने मन में वैसा ही प्रतिबिम्ब तैयार कर लेता है। इस अनुकरणप्रिय स्वभाव के कारण मनुष्य के लिए ऐसे जीवन्त बिम्ब उसके सामने रहने आवश्यक है जिससे उसके मन पर, उसके व्यवहारों पर उसका प्रभाव पड़ता रहे। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि एक व्यक्ति के निर्माण में 60% से भी ज्यादा वातावरण का प्रभाव होता है और 40% आनुवंशिकता का प्रभाव रहता है। इसलिये हमारे पूर्वाचार्यो ने कहा है- **कृत्संग सदाचारैः** अर्थात् जीवन में हमेशा सदाचारी पुरुषों का संग करना चाहिए क्योंकि **संसर्गजा गुणदोषाः भवन्ति** अर्थात् संसर्ग से ही गुण और दोष पैदा होते हैं।

सत्संग से अभिप्राय मात्र किसी पुस्तक के पठन से या किसी प्रवचन के श्रवण से नहीं है। सत्सग का अर्थ है सत् का संग करना। जिस संगति से सत्यता, सात्विकता और पवित्रता की प्रेरणा मिलती हों और जिससे हमारा जीवन-पथ प्रशस्त होता हो वह सत्संग है। सज्जन की क्षण भर की भी संगति मिल जाय तो संसार-सागर से पार करा देती है, दुष्ट लोगों के साथ चाहे जीवन भर रह लो तो सिवाय दुष्टता के कुछ भी हासिल नहीं होता। लक्ष्मण और भरत जैसे भाई मिले तो बनवास भी भारभूत नहीं लगता और शकुनी जैसे व्यक्ति घर आकर रहे तो राजसी सुख भी बनवासी की भांति नीरस प्रतीत होता है तभी तो कहा है कि संगति, स्नेह और मैत्री सदा अच्छे लोगों के साथ करनी चाहिए। श्री भर्तृहरि ने भी सत्संगति का बडा भारी महत्त्व बताते हुए नीति शतक में एक श्लोक लिखा है-

जाड्यंधियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नति दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्तिं
सत्संगति कथय किन्न करोति पुंसाम् ।।

अर्थात् सत्संगति बुद्धि की जड़ता को नष्ट करती है वाणी को सत्य से सिंचती है, मान बढ़ाती है, पाप मिटाती है, चित्त को प्रसन्नता देती है और संसार में यश फैलाती है। सत्संगति मनुष्य का कौन सा उपकार नहीं करती?

यदि फूलों के ढेर के पास बैठोगे तो सुगंध मिलेगी और गदंगी के ढेर के पास बैठेंगें तो दुर्गंध मिलेगी। यदि शोलों के पास बैठोगे तो गरमाहट मिलेगी और ओलों के पांस बैठोगे तो ठंडक मिलेगी। इसी प्रकार यदि सज्जनों के पास बैठोगे तो ठडक मिलेगी। यदि पानी दूध के साथ मिल जाये तो वह भी दूध के भाव बिकेगा। इससे विपरीत यदि दूध पानी में मिलता है तो न केवल दूध ही बल्कि पानी भी बेकार हो जायेगा। एक जौहरी की दुकान पर बैठकर तुम जौहरी और एक शराबी की दुकान पर बैठकर तुम शराबी ही बनोगे। बुरी संगत में रहकर आदमी बुरा बने या न बने किन्तु बुरा कहलाने लगता है। इसीलिए कहा जाता है-

बद की सौबत में मत बैठो
बद का है अंजाम बुरा ।
बद न बनो पर बद कहलाओ
बद अच्छा बदनाम बुरा ।।

कल्पना करे एक व्यक्ति शराब की दुकान पर जाकर बैठता है और शराबियों के साथ घूमता है। देखनेवाला यही सोचता है कि *यह भी जरुर शराब पीता होगा। वह कितना भी विश्वास* दिलाएँ फिर भी उसकी बात का कोई विश्वास नही कर सकता

क्योंकि उसकी संगति ऐसी है। इस संसार में बद से भी बुरा बदनाम है। बदनाम हो जाने पर कितनी ही सफाई पेश करो और सच्चाई बतलाओ पर वह शराबी ही कहलायेगा।

इससे विपरीत एक व्यक्ति जो इत्रवाले की दुकान पर जाकर बैठता है, वह भले ही इत्र न खरीदें पर इत्र की सुगंध उसके मस्तिष्क में अवश्य ही ताजगी देगी।

यह मुमकिन नहीं है कि एक घंटे के सत्संग में सारी बातें आपके हृदय को स्पर्श करें या चोट पहुँचायें। यदि चोट लगनी होती है तो एक छोटी सी कंकरी भी आँख को फोडने के लिए पर्याप्त है और नहीं लगना हो तो तीर भी आँख को क्षति नहीं पहुँचा सकता। सारी बात तो चोट लगने की है यानी जागृत होने की है। परमात्मा महावीर का सत्संग करके चंडकौशिक भद्रकौशिक बन गया था। सत्संग पाकर लुटेरा वाल्मिकी संत वाल्मिकी बन गया था।

लुकमान हकीम के जीवन-काल की अंतिम घटना है। वे एक ख्याति प्राप्त विद्वान् और सदाचारी व्यक्ति थे। जब वे मरण शय्या पर अपनी अंतिम सांसें ले रहे थे तब उन्होंने इशारे से अपने बेटे को पास बुलाकर कहा- "बेटा ! मैंने तुझे यूं तो समय-समय पर अनेक शिक्षाएं दी है पर जाते-जाते एक अंतिम शिक्षा और देना चाहता हूँ।"

इतना कहकर लुकमान ने इशारे से बेटे को कहा कि पूजा के कक्ष मे से धूपदानी उठा लाओ। जब वह धूपदानी लेकर हाजिर हुआ तो लुकमान ने उसमें से चुटकी भर चंदन लेकर उसके हाथ में थमाया और इशारे से दिग्दर्शित किया कि अब चुल्हे में से कोयला उठाकर लाओ।

जब बेटा कोयला लेकर आया तो दूसरी हथेली में कोयलों

को रखने का आदेश दिया। फिर लुकमान ने कहा-अब इन दोनों को अपने-अपने स्थान पर पुनः रखकर आओ। बेटे ने वैसा ही किया। उसके जिस हथेली में चंदन था वह चंदन की सुवास से अब भी महक रही थी और जिस हाथ में कोयला था वह हथेली कोयला छोड देने पर भी काली दिखाई दे रही थी।

लुकमान हकीम ने तथ्य स्पष्ट करते हुए बेटे को समझाया एक बात याद रखना-अच्छे आदमियों का संग चंदन के जैसा है; जब तक सग में रहेगा तब तक तो खुशबू मिलेगी ही और संग छूटने के बाद भी अच्छे विचारों की सुगंध से जिंदगी तरोताजा हो जायेगी। दुर्जनों का संग कोयले जैसा है। जब तक हाथ में कोयला है तब तो हाथ काला है ही किन्तु छोड देने पर भी वह कालिमा का कलक सदा बना रहता है। अतः बेटा ! जीवन में चंदन जैसे आदमियों का सग करना और कोयले जैसे कुसंग से दूर रहना। तभी तो कहा है- **'चंदन की चुटकी भली गाड़ी भरा न काठ'** अर्थात् चंदन की चुटकी भी मन को आल्हाद से भर देती है जब कि गाडी भर लकडी भी इस कार्य को संपन्न नहीं कर सकती।

बुद्ध की क्षण भर की सगति को पाकर बीभत्स दस्यु अंगुलिमाल एक उच्च कोटि का भिक्षुक बन गया था। सत्संग की रामबाण औषधि ने उसके जीवन का कायाकल्प कर दिया था। ऐसी औषधि की एक खुराक ही जीवन को आठ प्रहर तरगित करने के लिए पर्याप्त है। सत तुलसीदास जी ने तो क्षण भर की सत्सगति को भी कालजयी बतलाया है। क्षण भर के सत्संग की महिमा बताते हुए संत तुलसीदास ने एक पद लिखा था-

एक घडी आधी घडी, आधी में पुनि आध ।
तुलसी संगत साधु की, हरे कोटि अपराध ।।

13 जिंदगी... ऐसी बना

जिंदगी ऐसी बना
जिंदा रहे दिलशाद तू
जब न हो दुनिया में तो
दुनिया को आये याद तू

प्रवचनांश

- प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन-बांसुरी के दिव्य स्वर को जगा सकता है बस थोड़ी सी ऊँगलियाँ साधने की जरुरत है।
- एक अंधी और अंतहीन पुनरुक्ति में जीवन बीतता चला जाता है।
- व्यक्ति कितना जीता है इसका महत्व नहीं है, कैसे जीता है यह महत्वपूर्ण है। चाहे थोड़ा ही जीओ किन्तु प्रशस्त रीति से जीओ।
- जीवन को चंदन के पेड़ की तरह बनाना, जो वृक्ष के रुप में अवस्थित है तो सुगंध देता है। यदि कोई उसे काटता है तो वह काटनेवाले को भी सुगन्ध देता है और रगडने पर भी सौरभ ही बिखेरता है। ऐसा सुवासित जीवन ही सार्थक जीवन कहलाता है।

13 जिंदगी... ऐसी बना

हमारा जीवन एक बाँसुरी की भॉति है जो अपने में खाली और शून्य होते हुए भी संगीत का अपरिसीम सामर्थ्य लिए हुए है पर सब कुछ बजानेवाले पर निर्भर करता है। जीवन वैसा ही हो जाता है जैसा व्यक्ति उसे बनाना चाहता हो। जिंदगी तो मात्र एक अवसर है; कैसा गीत गाना है यह हमारे ऊपर निर्भर है। सत्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीवन-बांसुरी के दिव्य स्वर को जगा सकता है बस थोडी सी ऊँगलियाँ साधने की जरुरत है।

हम जिसे जीवन कहते है उसे जीवन नहीं समझना चाहिए। क्योंकि रोज सुबह उठ जाना और रोज रात सो जाना, रोज वही कमाना और वही भोजन, रोज वही मित्र और वही शत्रु। प्रतिदिन वही परिवार का जंजाल और वही गोरखधंधा। इस तरह THE SAME DEAD ROUTINE ही हमारा जीवन है। एक अंधी और अतहीन पुनरुक्ति में जीवन बीतता चला जाता है। एक उर्दू शायर ने इस बासी जिंदगी को देखकर अपने उद्‌गार यों प्रकट किये-

देखते-देखते ढल जाती है
हाथ से जैसे फिसल जाती है ।
सिर्फ जीने की Routine में ही
उम्र लोगों की निकल जाती है ।।

हम सिर्फ पानी के प्रवाह की तरह बहते चले जाते हैं। कभी बैठकर थोडा सा लेखा-जोखा करना चाहिए कि यदि पचास साल जीवन जिया है तो इन पचास सालों में कितने क्षण ऐसे हैं जो जीवन के क्षण है। शायद जीवन का एक क्षण भी ऐसा नहीं है जिसे दोबारा मांगने का मन करे। ऐसी बासी जिदगी में हम रोज आशा की सांस लेते हुए शक्ति और जीवन को

क्षीण कर रहे हैं।

जीवन का श्रेष्ठ कलाकार वही है जिसने अच्छी तरह जीवन को जाना है। व्यक्ति कितना जीता है इसका महत्व नहीं है, कैसे जीता है यह महत्वपूर्ण है। चाहे थोड़ा ही जीओ किन्तु प्रशस्त रीति से जीओ। यदि प्रशस्त रीति से जी लिए तो यह जीवन कृतार्थ हो जाएगा, सार्थक माना जाएगा। पाश्चात्य विद्वान् Samuel Johnson ने भी कहा है-

It matters not how a man dies but how he lives.

अर्थात् मनुष्य कैसे मरता है इसका काई महत्व नहीं अपितु वह कैसे जीता है उसका महत्व है। मोमबत्ती ज्यादा देर तो नहीं जलती परन्तु उसका थोड़ी देर तक जलना भी सार्थक है, क्योंकि वह प्रकाश तो फैलाती है। अगरबत्ती ज्यादा देर नहीं जलती परन्तु उसका थोडी देर जलना भी सार्थक है, क्योंकि वह सुगंध लुटाती है। कोई फूल अधिक समय तक नहीं खिला रहता परन्तु उसका कुछ समय खिलना सार्थक है, क्योंकि वह सुवास तो बिखेरता है।

जीवन के दो आयाम है- एक है लम्बाई और दूसरा है गहराई। यदि जीवन में प्रशांत महासागर जैसी गहराई होगी और गौरीशंकर जैसी ऊँचाई होगी, तभी हम जीवन का सही मूल्यांकन कर पायेंगे।

जिंदगी तो एक कहानी की तरह है। वह कितनी लम्बी है यह नहीं वरन् उसकी सजीवता और सरसता विचारणीय होती है। सिर्फ जिंदगी की लम्बाई का क्या मूल्य है ? अभिमन्यु की अपेक्षा जयद्रथ ने लम्बी उम्र पाई थी और गजसुकुमार मुनि की अपेक्षा सोमिल ब्राह्मण ने लम्बी जिन्दगी पाई थी। इसी सदर्भ को स्पष्ट करते हुए महाभारत का एक सूत्र कहता है-

मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयः न तु धूमायितं चिरम्

अर्थात् लम्बे समय तक धुंआने की अपेक्षा मुहूर्त्त भर जलना

श्रेष्ठ है। आजकल लोग इस चिंता में ज्यादा रहते हैं कि हम लम्बे समय तक कैसे जिएँ? यूं तो काग भी बलि खाकर बहुत दिनों तक जीवित रहता ही है परन्तु जीवन तो उन्हीं का श्रेष्ठ है जो दूसरों के लिए आवश्यकता पडने पर या संकट आ जाने पर स्वयं को न्योछावर कर देते हैं। जिंदगी ऐसी हो जो सिर्फ अपने लिए ही नहीं औरो के लिए भी हो।

इस जीवन को चंदन के पेड की तरह बनाना, जो वृक्ष के रुप में अवस्थित है तो सुगंध देता है। यदि कोई उसे काटता है तो वह काटनेवाले को भी सुगंध देता है और रगडने पर भी सौरभ ही बिखेरता है। ऐसा सुवासित जीवन ही सार्थक जीवन कहलाता है। किसी विचारक ने लिखा है-

He that does good to another, does good to himself

अर्थात् जो दूसरों की भलाई करता है, वह अपनी ही भलाई करता है।

एक राजा अपने जीवन को यथार्थ ढंग से जीना चाहता था। उसने एक अनुभवी मंत्री की सलाह से किसी विद्वान् पंडित को बुलावाया जो उसे जीवन का ज्ञान करा सके। वह पंडित काशी में सकल वेद-वेदांग, व्याकरण, साहित्य, कोष, न्याय आदि विषयो को हृदयंगम करके आया हुआ था। लाखों श्लोक उसे कठस्थ थे। वह पडित भी राजा को ज्ञान प्रदान कराने का इच्छुक था क्योंकि वह जानता था कि इस देश का राजा साहित्य और शास्त्र प्रेमी है। इन्हे अपनी विद्या दिखला कर मैं अर्थ की प्राप्ति कर सकता हूँ। यदि Engine सही पथ पर चल रहा हो तो डिब्बे भी सही मार्ग पर चल पडते हैं। पंडित का विचार था कि राजा स्वय जीने का तरीका जान लें तो प्रजा भी सुखी हो सकती है।

दूसरे दिन वह पॉचसौ धर्मग्रंथ लेकर दरबार में पहुँचा। पडित ने देखा कि इस समय तो राजा बहुत व्यस्त है। उसी

क्षण राजा को किसी आवश्यक कार्य की वजह से बाहर जाना जरुरी हो गया था। राजा चलने की तैयारी में था कि उसने सामने से आते हुए पंडित को देखा जो अनेक धर्मग्रंथों को लिए हुए आ रहा था।

समुचित अभिनंदन व अभिवादन के पश्चात् राजा ने विनम्रता से कहा- "पंडित जी ! इस समय ज्ञान की बातें सुनने के लिए मेरे पास बिलकुल समय नहीं है। जितनी देर में मैं घोड़े पर बैठकर प्रस्थान करुँ इतनी सी देर में कुछ सुना सको तो आपकी अत्यधिक कृपा होगी।

पंडित जी तो प्रतिभाशाली एवं विचक्षण थे ही अतः समस्त धर्मग्रंथों का सार उन्होंने एक क्षण में सुनाते हुए यह श्लोक कहा–

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथ कोटिभिः ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।

अर्थात् करोडों धर्मग्रंथों का सार आधे श्लोक में मात्र इतना ही है कि दूसरों पर उपकार करना पवित्र और श्रेष्ठ कार्य है तथा दूसरों का शोषण और उत्पीडन करना घृणित एवं नीच कार्य है।

जब तक इस शरीर में प्राण है तभी तक इसकी कीमत है। प्राण रहित शरीर को अग्नि में भस्म कर दिया जाता है। अत. चार दिन की जिंदगी प्राप्त हुई है तो सामर्थ्य अनुसार उसे परोपकार में लगा देना ही जीवन की सफलता है। किसी उर्दू शायर की पंक्तियाँ है-

हमेशा के लिए रहना नहीं
इस दौरे फानी में ।
कुछ अच्छा काम कर लो
चार दिन की जिंदगानी में ।।

14 कबीरा गर्व न कीजिए

एक छोटी सी चिड़िया उड़ने का आनंद ले सकती है
एक छोटी सी तितली फूलों का मकरंद ले सकती है
किसी को छोटा समझने की आदत छोड़ दो...
गुलाब की छोटी सी कलिका भी सुगंध दे सकती है

प्रवचनांश

- मनुष्य की सभ्यता जितनी विकसित हुई है उतना ही मनुष्य जटिल, कठोर और अहंकारी बन गया।
- मनुष्य ही इस धरती पर ऐसा प्राणी है जिसका स्वर है- I AM EVERYTHING.
- जिंदगी में जो हो रहा है वह किसी के लिए नहीं हो रहा बल्कि सब कुछ प्रकृति के क्रमानुसार हो रहा है।
- न खुद अपने अहकार को बढाओ और न अपने कारण दूसरों के अहंकार को भोजन दो क्योंकि वह भी पाप है।
- सुगध का प्रचार करना जीवन का लक्ष्य नहीं है, जीवन का लक्ष्य है सुगंधित बनना।

14 कबीरा गर्व न कीजिए

आज के मनुष्य की यह कैसी विडंबना है कि उसे थोड़ा सा सम्मान मिलते ही वह पागल हो जाता है; जरा-सा धन प्राप्त होते ही बेकाबू हो जाता है; साधारण-सा ज्ञानार्जन सीखते ही वह उपदेश की भाषा में बोलने लग जाता है और तनिक सा यश मिलते ही दुनिया का उपहास करने लग जाता है। यदि सुंदर रुप मिल गया तो वह दर्पण को तोड़ डालता है। थोड़ा सा अधिकार हासिल होते ही वह दूसरों को तबाह करने में लग जाता है। इस प्रकार तमाम उम्र यह मनुष्य चलनी से पानी भरने की प्रक्रिया करते हुए अपने आप को बड़ा महत्वपूर्ण समझता है। संत कबीर ने मनुष्यों को प्रतिबोधित करते हुए एक दोहा लिखा है-

कबीरा गर्व न कीजिए काल गहे कर केस ।
न जाने कित मारि है क्या घर क्या परदेस ।।

मनुष्य की सभ्यता जितनी विकसित हुई है उतना ही मनुष्य जटिल, कठोर और अहंकारी बन गया। मनुष्य के हाथ में कुछ भी नहीं है फिर भी उसे 'मैं कुछ हूँ' का बहम पैदा होता है। यह बहम कहता है- मैं सारे संसार का केन्द्र हूँ; मेरे बिना दुनिया का कोई काम नहीं चलता, मैं ही सबका पालन-पोषण करता हूँ और मैं न रहूँ तो परिवार भूखा मर जायेगा परंतु अभिमानी के सारे विचार व्यर्थ की कल्पनाएं हैं। किसी के बिना किसी का काम रुकता नहीं। सभी को अपने कर्मों के अनुसार सब कुछ मिलता है परन्तु व्यक्ति

मान लेता है कि मैं ही सबके लिये सहारा हूँ। हर व्यक्ति यह सोचता है मानों सभी गीत उसी के लिए गाये जाते है; हवायें उसी के लिए बहती है; चंद्र-सूर्य भी उसी के लिये परिक्रमा करते हैं और आकाश के बादल भी उसी के खेत में बरसते हैं।

प्रकृति का यह महान् आश्चर्य है कि सीपियों ने असंख्य मोतियों को जन्म दिया परंतु वे कभी इठलायी नहीं; कीचड़ ने असंख्य कमल पैदा किये किन्तु गर्व से गर्दन को कभी ऊँचा नहीं उठाया। सिर्फ मनुष्य ही इस धरती पर ऐसा प्राणी है जिसका स्वर है- **I am everything.** यानी मैं ही सब कुछ हूँ और इस दुनिया में जो भी हो रहा है उस पर मेरी पूरी मालकियत है। यदि कोई फूल खिलें तो मेरे लिए ही खिलें और कोई सूरज निकले तो मेरे आंगन को ही प्रकाशित करें।

महारानी विक्टोरिया के पति अपने शयन कक्ष में उपन्यास पढ रहे थे। संध्या ढलने के बाद महारानी अपने राजनैतिक क्रिया-कलापों से निवृत्त हो कर महल लौटी। दरवाजे को अन्दर से बन्द देख उसने दरबाजे पर दस्तक दी। भीतर से आवाज आई- "कौन है?"

महारानी बोली- " मैं महारानी हूँ।" मगर द्वार नही खुला तब रानी ने दोबारा द्वार को खटखटाया। भीतर से वही आवाज आई- "कौन है?" रानी बोली- 'विक्टोरिया' इस बार पति ने झट से दरबाजा खोल दिया।

महारानी आश्चर्यचकित थी, वह अपने पति के पास पहुॅची और बोली- "जब आपने मेरी आवाज को पहचान ही

लिया था तो दरवाजा क्यों नहीं खोला?"

पति ने जवाब दिया- "पहले महारानी अंदर आना चाह रही थी, जिसकी मुझे जरुरत नहीं थी। दूसरी बार विक्टोरिया भीतर आना चाह रही थी, जिसकी मुझे चाह थी तो मैंने उसके लिये दरवाजा खोल दिया।" अपने पति का यह उत्तर सुनकर विक्टोरिया को अपने झूठे अहंकार की पहचान हो गई।

इस दुनिया का सत्य यह है कि यहाँ कोई भी केन्द्र नहीं है। दुनिया चल रही है, उसी में हम चल रहे हैं। ट्रेन दौड रही है उसमें हम बैठे हुए हैं। एक रथ गुजर रहा था और एक मक्खी रथ के पहिये की कील पर बैठी हुई थी। रथ के चलने से बडी धूल उड रही थी क्योंकि रथ में बारह घोडे जुडे हुए थे। बडी भयंकर आवाज हो रही थी। उस मक्खी ने आसपास देखा और कहा आज मैं बड़ी धूल उड़ा रही हूँ और जब इतनी धूल उड़ा रही हूँ तो सचमुच मैं बहुत बडी हूँ।

ऐसा ही है हमारा अहंकार जैसे एक बूढी औरत के पास मुर्गा था। वह मुर्गा सुबह-सुबह बांग देता था तभी सूरज निकलता था। इस बात से उस बुढिया को बडा अहंकार आ गया। उसने गाव वालो को अपनी ऐंठ दिखलाते हुए कहा- "मुझसे जरा सोच-समझकर व्यवहार करना। यदि मैं अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली गई तो फिर यहाँ सूरज नहीं निकलेगा। याद रखो, मेरा मुर्गा जब बांग देता है तभी सूरज निकलता है।" ठीक इसी प्रकार हर मनुष्य को यही ख्याल है कि अगर मैं नही रहा तो न मालूम क्या होगा? जिंदगी मे जो हो रहा है वह किसी के लिए नहीं हो रहा

बल्कि सब कुछ प्रकृति के क्रमानुसार हो रहा है।

इस अहंकार के बड़े रंग है और बड़े अनोखे रुप है। हर जगह वह अहंकारी भूल-चूक खोज ही लेता है। अहंकार की गति ऐसी है जैसे कोई साइकिल चलाता है तो पैडल मारता है। यदि वह पैडल चलाना रोक दें तो साइकिल थोड़ी-बहुत देर चल जायेगी और ढलान हो तो थोड़ी देर ज्यादा चल जायेगी फिर अपने आप रुक जाती है, सम्हल नहीं सकती। अहंकार की साइकिल भी महत्त्वकांक्षा के पैडल मारने से चलती है। चीनी दार्शनिक लाओत्से ने कहा है- न खुद अपने अहंकार को बढ़ाओ और न अपने कारण दूसरों के अहंकार को भोजन दो क्योंकि वह भी पाप है।

अभिमानी व्यक्ति Soda water की Bottle की गोली की तरह न तो अंदर की गंदगी को बाहर निकलने देता है और न ही बाहर की ताजी हवा को अंदर आने देता है। वह तो अपने अहंकार के घोड़े पर बैठकर दूसरों को जीतने व प्रतिशोध लेने के लिये चल पड़ता है।

एक यहूदी धनपति एक दिन प्रसिद्ध संत हसीद फकीर के पास आया। उनके सान्निध्य में बैठकर वह धनपति कहने लगा- "मै परमात्मा का ध्यान करना चाहता हूँ। कितनी भी कोशिश क्यो न कर लूँ किन्तु ध्यान में मन ही नहीं लगता। मेरा मन सदा 'मैं' के स्वर से भरा रहता है।"

फकीर ने कहा- "आओ, मेरे साथ चलो। फकीर उसे खिड़की के पास ले गया और पूछा इस खिड़की के कांच से तुम्हे बाहर का क्या दिखाई दे रहा है?"

धनपति ने कहा- "बाहर में रहे हुए वृक्ष, आकाश में उड़ते पक्षी, बादल और सूरज दिखाई दे रहे हैं, क्योंकि यह कांच पारदर्शी है।" अब फकीर धनपति को दूसरी तरफ ले गया जहाँ दीवार पर आईना लटका हुआ था जिसमें धनपति ने अपने को आदमकद निहारा। तब फकीर ने पूछा इस कांच में और उस कांच में तुम्हें क्या फर्क महसूस हुआ?

धनपति ने कहा- "इस कांच में तो मेरी शक्ल के अलावा बाहर के कुछ भी दृश्य नज़र नही आये।" फकीर ने कहा- "इस कांच के पीछे रजत की एक परत होने से आर-पार की चीजें दिखाई नही देती सिर्फ अपनी शक्ल दिखाई देती है। ऐसी भौतिक वस्तुओं की रजत-परत तुम्हारे चारों ओर है। अतः जब तुम परमात्मा का ध्यान लगाने बैठते हो तो अपने 'मैं' में ही उलझ जाते हो, प्रभु के द्वार तक नहीं पहुँच पाते। अहंकार की परत जब तक तुम्हारे अंतस् में बनी रहेगी तब तक तुम्हे अपने से अतिरिक्त कोई नहीं दिखेगा। जीवन का लक्ष्य 'मैं' का प्रचार नहीं होना चाहिए।

सुगंध का प्रचार करना जीवन का लक्ष्य नहीं है जीवन का लक्ष्य है सुंगधित बनना। यह सत्य है कि सुगंध कभी भवरो को नहीं खोजती। भंवरे स्वयमेव सुगंध से भी आकर्षित होकर पहुँच जाते हैं। संत कबीर दास जी ने अहकारियों को चेतावनी देते हुए कहा है जब तक इस संसार रुपी समुद्र में हमारी जीवन-नैया है तब तक गर्व मत करो-

कबीरा गर्व न कीजिए, कबहूं न हंसिए कोय ।
अबहूं नांव समुद में का जाने का होय ।।

15 जीवन का उपयोग

जिंदगी न केवल जीने का बाना
जिंदगी न केवल सांसों का खजाना
जिंदगी सिन्दूर है पूरब दिशा का
जिंदगी का काम है सूरज बनाना

प्रवचनांश

- वस्तु की प्राप्ति का इतना महत्व नहीं है जितना कि उसके उपयोग का है।
- प्रयोग की सम्यक् विधि के अभाव में दिव्य पदार्थ भी सामान्य बन जाते है।
- जीवन का योग मिल गया तो ऐसा मत समझो कि सब कुछ मिल गया। जीवन का उतना ही मूल्य है जितना हम उसमें पैदा करेगें।
- अनत संपदाओं के मालिक बनकर उस संपदा का समुचित उपयोग करना चाहिए। जीवन का जितना उपयोग विराटता मे किया जाय उतना ही जीवन अर्थपूर्ण बन जाता है।

15 जीवन का उपयोग

किसी भी वस्तु का उपयोग दो ढंग से होता हैं। एक है Best ओर दूसरा है Waste यानी सही और गलत तरीके से उपयोग हो सकता है। इसीलिए तो वस्तु की प्राप्ति का इतना महत्व नहीं है जितना कि उसके उपयोग का है। इस संसार में सभी इतने पुण्यशाली नहीं होते कि जिनको हर वस्तु प्राप्त हो जाय। कुछ लोग ऐसे भी होते है कि जिन्हें वस्तुओ का योग तो मिल जाता है परंतु उन्हें संभालने की कुशलता उनमें नहीं होती। कुछ भाग्यशाली ऐसे भी होते है कि जिन्हें वस्तु को सभालना तो आता है किन्तु उसका सही प्रयोग करना वे नहीं जानते। इस पृथ्वी पर चंद लोग ही ऐसे हैं जो वस्तुओं का सही प्रयोग करके उसके मूल्य को बढाते है। वास्तव में देखा जाय तो दुर्लभ वस्तुओ को प्राप्त करके उसे सभालना एव सार्थक करना बहुत कठिन है।

साहित्यिक शब्दकोष मे दो शब्द मिलते हैं- योग और प्रयोग। प्रयोग के बिना योग व्यर्थ है। प्रयोग भी दो प्रकार का होता है, एक है सत्प्रयोग और दूसरा है दुष्प्रयोग। प्रयोग की सम्यक् विधि के अभाव में दिव्य पदार्थ भी सामान्य बन जाते है। कहते है वर्णमाला के सभी स्वर और व्यजनों मे अमोघ शक्ति है। यदि कोई उन्हे व्यवस्थित रुप से संयोजन करके निष्ठापूर्वक जपने की विधि जानता हो तो वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर महामंत्र बन सकता है। सभी वनस्पतियों मे अचित्य शक्ति है यदि उनका व्यवस्थित मिश्रण और परिक्षण

किया जाय तो दिव्य औषधियाँ बनाई जा सकती हैं।

एक गांव में दो मित्र रहते थे। दोनों में प्रेम की प्रगाढ़ता इतनी थी कि वे जहाँ भी जाते साथ ही जाते थे। एक बार वे दोनों प्रदर्शनी देखने शहर में गये। वहाँ उन्होंने दो यंत्र देखें; एक था सूक्ष्मदर्शी यत्र और दूसरा था दूरदर्शी यंत्र। सूक्ष्मदर्शी यंत्र के माध्यम से छोटी से छोटी वस्तु बड़ी दिखाई देती थी और दूरदर्शी यंत्र से दूर की चीजें भी पास दिखाई देती थी। दोनों ने यंत्र खरीद लिए और अपने घर लौट आये। दूसरे ही दिन से दोनो ने यंत्र का प्रयोग शुरु कर दिया।

एक मित्र ने सूक्ष्मदर्शी यंत्र का पहला प्रयोग घर के किसी कोने में किया तो पाया कि मिट्टी के छोटे-छोटे कण कचरे की भॉति दिखाई दे रहे हैं। उसने नौकरों को बुलाकर डॉटते हुए कहा- "क्या तुम्हें सफाई करनी नहीं आती? रोज घर की सफाई करते हो फिर भी इतनी मिट्टी है?" फिर उसने यत्र का दूसरा प्रयोग भोजन करते समय किया। वह देखकर हैरान हो गया कि थाली मे रखी हुई रोटी तो सारी जली हुई है क्योकि रोटी पर पडा हुआ छोटा सा दाग उसे बहुत बडा दिखाई देने लगा। आवेश में आकर उसने पत्नी को फटकारा और खाना छोडकर घर से बाहर बरामदे मे आ गया।

तब उसने दूरदर्शी यत्र को हाथ मे लिया और उसका प्रयोग बरामदे के बाहर जो कचरे का ढेर पड़ा था उस पर किया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि सारा कचरा घर के आंगन मे पडा है। फिर उसने दूसरा प्रयोग घर से दूर बहती हुई नाली पर किया तो ऐसा महसूस हुआ कि वह गदी नाली

उसके घर में ही बह रही है। यह सब नजारे देखकर अब तो उसके गुस्से की सीमा ही नहीं रही। उसने दोनों यंत्र हाथ में लिये और जमीन पर पटककर तोड डाले।

दूसरे दिन उसने सोचा मेरे मित्र ने भी ये दो यंत्र खरीदे थे, वह बेचारा कितना दुखी होगा। यह सोचकर वह मित्र के घर पहुँचा। उसका मित्र तो बहुत प्रसन्न था और उसकी प्रसन्नता का कारण भी वे दोनों यंत्र ही थे यह सुनकर उसे बड़ी हैरानी हुई।

तब उसके मित्र ने बताया- "मित्र ! मैं सूक्ष्मदर्शी यंत्र को दुकान पर रखता हूँ जिससे मुझे ज्ञात हो जाता है कि किस हीरे में कितना अंश कचरे का है। इस तरह यंत्र के प्रयोग से मेरा जवाहरात का काम खूब बढ़ गया है। दूरदर्शी यंत्र को मैं अपने घर रखता हूँ ; जब थककर घर लौटता हूँ तब मेरे घर के पीछे बहनेवाली नदी और सुंदर बगीचे का दृश्य इस यंत्र के प्रयोग से देख लेता हूँ तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है मैं घर में नहीं हूँ किसी स्वर्गलोक में बैठा हूँ।" यह सुनकर मित्र को अपने दुख का कारण और मित्र की प्रसन्नता का राज समझ में आ गया।

किसी भी वस्तु का सत्प्रयोग ही व्यक्ति को सुखी बनाता है। जीवन का योग मिल गया तो सब कुछ मिल गया ऐसा मत समझो। जीवन का उतना ही मूल्य है जितना हम उसमें पैदा करेंगें। यदि आपके पास स्वर्ण की ईंटे हैं तो उसका उपयोग उसे संभालकर रखने में नहीं अपितु सही प्रयोग करने में है। उपयोग के अभाव में ईट चाहे सोने की रखी हो या पत्थर की, इससे क्या फर्क पड़ता है। धन का मूल्य उसके

उपयोग में है, पकड़ने में नहीं। धन जितना चले उतना उपयोगी होता है। इसलिये तो धन को Currency कहा जाता है। Currency का मतलब जो चलता रहे, बहता रहे। आज America धनी देश इसलिए है कि वहाँ के लोग धन के Currency होने का अर्थ समझते हैं। जो भी धन को पकडना चाहते हैं वे गरीब है। यही तथ्य जीवन-धन के संबंध मे भी है।

सुना है द्वितीय विश्वयुद्ध के समय Burma के एक जंगल में आदिवासियों के हाथ मे हवाई-जहाज आ गया। अब आदिवासियों को यह ज्ञात ही नही था कि यह कोई हवाई जहाज है, वे तो बैलगाडी को ही जानते थे अतः उन्होंने हवाई जहाज मे बैल जोत लिये और नये ढग की बैलगाड़ी का इस्तेमाल करके वे बहुत प्रसन्न हुए।

कुछ दिनो के बाद एक शहरी आदमी जिसे हवाई जहाज का अनुभव नही था किन्तु बस और ट्रको को उसने देखा था। उसने आदिवासियों की समझाया कि इसमे बैल जोतने की जरुरत नही है यह तो बस है। आदिवासियो ने कोशिश करके दो-चार दिन मे उस हवाई जहाज को बस की तरह चलाया। जब किसी बुद्धिमान ने बताया कि यह बस नही हवाई जहाज है तब वह हवाई जहाज उड़ सका। हम सब भी उन आदिवासियों की तरह मनुष्य जन्म को बैलगाड़ी समझकर घसीट रहे है। बुद्ध पुरुष कहते है कि अनत सपदाओ के मालिक बनकर उस सपदा का समुचित उपयोग करना चाहिए। जीवन का जितना उपयोग विराटता में किया जाय उतना ही जीवन अर्थपूर्ण बन जाता है।

16 समस्या क्यों ?

अमावस किस माह में नहीं आती
थकावट किस राह में नहीं आती
संसार में कोई बतावे तो सही
समस्या किस राह में नहीं आती

प्रवचनांश

- ऐसा कोई व्यक्ति यहाँ नहीं है जो सोचता हो, समझता हो किन्तु उसके जीवन में समस्याएँ ना हो।
- जो भीतर है वह बाहर आयेगा- आप उसे कितना ही छिपाने या दबाने का प्रयत्न करें किन्तु वह अवश्य बाहर झलकेगा।
- यूं जितने मस्तिष्क हैं उतने दृष्टिकोण हैं। यह सृष्टि व्यापक है ओर दृष्टि सीमित है किन्तु मस्तिष्क सृष्टि से भी अधिक व्यापक है।
- समस्या को समग्र रुप से देखना और जानना इसलिए आवश्यक है क्योंकि वहीं से समाधान की राह निकलती है।

16 समस्या क्यों ?

प्रत्येक व्यक्ति ऐसे जगत में जी रहा है जहाँ अनेक समस्याएँ हैं। इस दुनिया में कोई जन्म ले और समस्या से ग्रस्त ना रहें ऐसा मानना असत्य सिद्ध होगा। यहाँ बोलना भी एक समस्या है तो चुप रहना भी एक समस्या है। किसी की बात सुनना भी समस्या है और नहीं सुनना भी समस्या है।

संसार यानी समस्याओं का मुख्य केन्द्र, जहाँ जीवन है वहाँ समस्या भी बनी रहेगी। ऐसा कोई व्यक्ति यहाँ नहीं है जो सोचता हो, समझता हो किन्तु उसके जीवन में समस्याएँ ना हो। विभिन्न परिस्थितियाँ, बदलता वातावरण और हमारे विचारों का प्रभाव ही ऐसा है जहॉ समस्याओं से अलिप्त रहना असंभव तो नहीं किन्तु मुश्किल अवश्य है। कहा भी है-

चोट खा कर सिर्फ टूटते हैं दर्पण,
किन्तु आकृतियाँ कभी टूटी नहीं।
आदमी से रुठ जाता है सभी कुछ
पर समस्याएं कभी रुठी नहीं।।

चिंतनशील मानस मे यह एक सहज जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है कि आखिर मनुष्य के जीवन मे इतनी समस्याएँ क्यों है? दरअसल बात यह है कि मनुष्य चाहता कुछ है और उसके जीवन मे होता कुछ है। अक्सर ऐसा होता है व्यक्ति खोजता आनद को है और पाता विषाद है। आज इस इक्कीसवीं सदी के Electronic और Atomic युग में विज्ञान का विकास

तो चरम सीमा तक पहुँच गया पर मनुष्य के जीवन में दिन-प्रतिदिन अशांति ही बढ़ती जा रही है। जब भीतर में दुःख, पीड़ा और बेचैनी होगी तो यह स्वाभाविक है कि वह सब कुछ बाहर में छलकेगा। यह मनोविज्ञान का सूत्र है- जो भीतर है वह बाहर आयेगा। आप उसे कितना ही छिपाने या दबाने का प्रयत्न करें किन्तु वह अवश्य बाहर झलकेगा।

कहते हैं इस धरती पर 3000 वर्ष के इतिहास में मनुष्य ने अनेक युद्ध किये। यह कैसी दुनिया है जहाँ रोज युद्ध हो रहे है। जब युद्ध नहीं हो रहा होता तब युद्ध की तैयारी हो रही होती है। मनुष्य के इतिहास में अब तक शांति का कोई भी क्षण नहीं आया। जब तक लड़ने की तैयारी चलती है तब तक Cold War चल रहा है और जब लडने लगते हैं तब Hot war शुरु हो जाता है। इस प्रकार चौबीस घंटे लड़ाई और अशांति जारी रहती है।

भारत देशवासियों की ऐसी मानसिक परिस्थिति देखकर किसी ने भारत के मंत्री से प्रश्न किया कि तुम्हारे भारत में समस्याएँ कितनी हैं? मंत्री ने कहा, जितनी भारत की जनसंख्या है उतनी ही समस्याएँ हैं। प्रश्नकर्त्ता ने आगे पूछा- इसका मतलब एक व्यक्ति की एक ही समस्या हुई। तब भारत के मत्री ने हसते हुए कहा- "नहीं, यदि एक ही व्यक्ति की सारी समस्याएँ कही जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।"

इसका कारण स्पष्ट है कि प्रत्येक मस्तिष्क संवेदनशील है अतः वह जैसा अनुभव करता है वैसा ही उसका दृष्टिकोण बनता है। यूं जितने मस्तिष्क है उतने दृष्टिकोण है। यह सृष्टि व्यापक है और मनुष्य की दृष्टि सीमित है किन्तु मस्तिष्क सृष्टि

से भी अधिक व्यापक है क्योंकि वह अनदेखे, अनजाने छोरों तक पहुँचता है। हृदय संवेदनशील है अतः सामान्य क्षणों को भी विशेष रुप में बदलता है। ऐसी स्थिति में अनेक प्रकार की समस्याएँ पैदा होना सहज संभाव्य है।

समस्या को सम्यक् प्रकार से देखना और समझना ही समस्या का सही निदान कहलाता है। समाधान से पहले यह निश्चित हो जाना चाहिए कि समस्या क्या है? जिससे हम भयभीत होते हैं उससे यदि परिचित हो जाय तो समस्या से मुक्ति मिल सकती है। बीमारी का ठीक पता न हो तो औषध कैसे खोजोगे? निदान आधा समाधान है। सर्वप्रथम तो समस्या को समझने की जरुरत है कि वह यथार्थ में है भी या नही।

एक राजा के मत्री की अचानक मृत्यु हो गई तो राजा ने नये मंत्री के चुनाव हेतु बहुत सी परिक्षाओं का आयोजन रखा। उन सभी परिक्षाओं में से अंततः तीन व्यक्ति चुने गये। अब इनकी अतिम निर्णायक परीक्षा होनी थी।

परीक्षा के एक दिन पूर्व यह अफवाह फैली कि कल राजा उन तीनो को एक ऐसे भवन में बद कर देगा जिसका एक ही दरवाजा होगा। उस दरवाजे पर विशेष ताला लगाया हुआ होगा और वह ताला गणित की पहेली की भॉति रहेगा। जो व्यक्ति गणित का विद्वान् होगा वही उस ताले को खोल सकेगा। उसे ही मत्री बनाया जायेगा। ये अफवाहें जब उन तीनों ने सुनी तो वे भी ताले के गणित से संबंधित पुस्तके रात भर पढते रहे।

सुबह तीनों राजमहल पहुँचे; अफवाह सच थी। तीन में से दो व्यक्ति गणित की किताबें भी साथ लाए हुए थे। उस ताले पर जो अंक लिखे हुए थे उसे कागज पर लिखकर हिसाब करने में वे तल्लीन हो गये। तीसरा व्यक्ति कुछ चिंतन करने लगा और कुछ सोच-विचार कर अचानक उठा। दरवाजे तक पहुँचकर उसने हैन्डल पर हाथ घुमाया तो देखा कि दरवाजा तो खुला हुआ ही था। उस पर ताला लगा तो था पर वह बंद किया हुआ नहीं था। अतः वह चुपचाप बाहर निकल गया और वे दोनो गणित के हिसाब में इतने उलझ चुके थे कि उन्हें उसके बाहर जाने का भी पता नहीं लगा। उन दोनों को मालूम ही तब हुआ जब राजा स्वयं नये मंत्री को लेकर राजभवन में पधारे।

राजा ने कहा- "यह हिसाब–किताब तुम अब बंद करो। तुम्हारी देखने व सोचने की क्षमता इतनी भी सजग नहीं है कि तुम दरवाजे पर लगा हुआ ताला खुला है या बंद यह भी देख सको, ताले की स्थिति को देखे बिना ही ताला खोलने के लिए चाबी की खोज कर रहे हो।"

जिंदगी की पहली समस्या यह है कि हम समस्या को देखे बिना ही समाधान खोजने मे लग जाते है। हम उस ताले को खोलने मे लग जाते हैं जहाँ समस्या का ताला लगा ही नही होता।

समाधान खोजने से पहले यह सुनिश्चित होना चाहिए कि समस्या क्या है? समस्या के परिप्रेक्ष्य से परिचित होना अनिवार्य है। समस्या को समग्र रुप से देखना और जानना इसलिए

आवश्यक है क्योंकि वहीं से समाधान की राह निकलती है। कभी देखा होगा आपने भी जब खिडकी से कोई पंछी कमरे में प्रवेश कर लेता है तो वह सब तरफ से बाहर निकलने की कोशिश करता है, बार-बार दीवारों से जाकर टकराता है लेकिन उस खिड़की के पास नहीं जा पाता जहाँ से भीतर आया था। वह उस खिड़की को छोडकर सब जगह चोंच मारता है, पंख मारता है, फडफड़ाता है। जितना दीवारों से टकराता है उतना ही घबराता है।

परिणामस्वरुप उस घबराहट में फिर खिड़की दिखाई पडनी बंद हो जाती है। एक बात निश्चित है कि भीतर आ गये हो तो बाहर भी जा सकोगे। भीतर और बाहर एक ही अस्तित्व के दो छोर है। जहाँ से समस्या पैदा हुई है समाधान भी वहीं से मिलेगा।

17 मन के जीते जीत

यह जीवन है एक गीत
अब उसको गाना होगा
पाँव उठे है मेरे तो
मंजिल को आना होगा

प्रवचनांश

- जीवन एक बाजी है, हार-जीत तो हमारे हाथ में नहीं है पर बाजी को खेलना हमारे हाथ मे है।
- सफलता उन्हीं के कदम चूमती है जो संशय से परे रहकर निश्चयात्मक प्रवृत्ति के धनी होते है।
- मनुष्य के पास शक्ति और साधनों की इतनी कमी नही है जितनी प्राप्त सुविधा और उपलब्ध शक्ति का आत्मविश्वास से उपयोग करने की है।
- मनोबल जितना अधिक होगा उतना ही हमारा सम्बन्ध आत्मा की अनत शक्ति के साथ गहरा होता जायेगा।

17 मन के जीते जीत

जेरिमि टेलर ने कहा है- **'जीवन एक बाजी है, हार-जीत तो हमारे हाथ में नहीं है पर बाजी को खेलना हमारे हाथ में है।'** हार और जीत की फिक्र किये बिना इस जीवन की बाजी को एक आत्मविश्वासी व्यक्ति ही खेल सकता है। उसके मन का प्रबल विश्वास ही उसकी जीत है तभी तो कहा है- **"मन के जीते जीत मन के हारे हार।"**

जीवन बहुत छोटा है और संसार में कार्य बहुत है। ऐसी स्थिति में निश्चयात्मक वृत्ति से शक्ति पैदा की जा सकती है। दृढ निश्चय वालो के लिये कुदरत भी रास्ता बना देती है। निश्चय की दृढता से विचारो मे स्थिरता और गहराई बढती जाती है। अतः सफलता उन्ही के कदम चूमती है जो संशय से परे रहकर निश्चयात्मक प्रवृत्ति के धनी होते है; जो दूसरो की बातों को गौण करके स्वय की बात को प्रमुखता देते है। रामधारी सिह 'दिनकर' ने कहा है-

गौण अतिशय गौण है तेरे विषय में
दूसरे क्या बोलते क्या सोचते हैं ।
मुख्य है यह बात पर अपने विषय में
तू स्वयं क्या सोचता है क्या जानता है ।।

स्वय पर विश्वास करना हमारी जीवन-नैया का एक मात्र आधार है। मनुष्य के पास विवेचना की शक्ति ऐसी

है कि जिसके द्वारा वह प्रत्येक परिस्थिति की समीक्षा कर सकता है। अपनी बुराइयों को खोजकर विषम स्थिति से निकलने के लिये योजना बना सकता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के पास शक्ति और साधनों की इतनी कमी नहीं है जितनी प्राप्त सुविधा और उपलब्ध शक्ति का आत्मविश्वास से उपयोग करने की है। यह आत्मविश्वास जीवन की हर छोटी-बडी समस्या का समाधान है। चीनी विचारक ने भी यही कहा है- **Every task is easy to a resolute man** अर्थात् धुन के पक्के आदमी के लिए हर काम आसान है।

बात दरअसल यह है कि आदमी अपनी क्षमताओं के प्रति सजग नही रहता। उत्पादक शक्ति का यह नियम है कि किसी भी कार्य में तथा उनके लिये पैदा हुए मनोभावों में बडा गहरा सम्बन्ध होता है। विश्वास का स्त्रोत मन है और मन मे रहने वाली आस्था व्यक्ति को शक्ति देती है। ऐसे में हम जिस कार्य को दृढतापूर्वक करना चाहेंगे वह निश्चित रुप से सफल होगा।

एक विश्वविख्यात अमेरीकन विद्वान् से जब उनकी सफलता का रहस्य पूछा गया तो उन्होने बताया- "मै जब कर्म करता हूँ तो सोचता हूँ कि हर एक बात मेरे पर निर्भर है और जब मै प्रार्थना करता हूँ तो सोचता हूँ हर बात ईश्वर पर निर्भर है।" आज के मनोवैज्ञानिको का भी यही कथन है कि मनुष्य को वह काम नहीं करना चाहिए जहॉ उसको अपनी क्षमता पर विश्वास ना हो। औषधि

भी विश्वास से ही फलदायक बनती है। आत्म-विश्वास जितना मजबूत होगा उतनी शक्ति दुगुनी और योग्यता चौगुनी हो जाती है। फलस्वरुप एकाग्रता भी बढ़ जाती है। शायर ने भी इस हकीकत को एक शेर में ढाला है-

काम करने के लिए दिल और उमंग चाहिए ।
ताकत तो अपने आप आ जाती है ।।

गौतम बुद्ध के जीवन काल का एक प्रसंग है। एक बार गौतम बुद्ध भिक्षु संग के साथ विहार करते हुए शाल्यवन में किसी विशाल वट-वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। धर्म-चर्चा चल रही थी। एक शिष्य ने जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा- "भगवन्! कई लोग दुर्बल और साधनहीन होते हुए भी बड़े-बड़े असंभव आखिर महावतो ने बडे-बड़े असंभव कार्य कर दिखाते हैं। जबकि कितने ही साधन-संपन्न और बलवान व्यक्ति उस कार्य को करने मैं असफल सिद्ध होते हैं। क्या इस में पूर्वजन्म के पाप अवरोध बनकर खड़े हो जाते हैं?"

तब तथागत बुद्ध ने.इस प्रश्न के उत्तर मे एक कथा सुनाई थी जो इस प्रकार है-

विराट नगर के राजा सुकीर्त्ति के पास लौहश्रृंग नामक एक हाथी था। उस पर आरुढ होकर राजा ने अनेक युद्धों मे विजय प्राप्त की थी। सारी प्रजा का भी वह प्रिय पात्र था। उसकी प्रिय पात्रता का कारण यह था कि उस में अनेक गुण थे। वह बुद्धिमान एव स्वामी भक्त था। अपने जीवन मे उसने बडी यशोगाथा प्राप्त की थी। समय के

प्रभाव से लौहश्रृंग भी वृद्ध हो गया था। उसका सारा शरीर शिथिल हो गया जिससे वह युद्ध में जाने लायक नहीं रहा। अब उसमें युवावस्थावाला पराक्रम भी नहीं रहा था अतः वह हाथीशाला की शोभा मात्र बनकर रह गया था। उपयोगिता और महत्ता कम हो जाने के कारण लौहश्रृंग की ओर पहले जितना ध्यान भी नहीं दिया जाता था।

कई दिनों से लौहश्रृंग को पानी न मिलने के कारण वह तालाब की ओर चल पड़ा। तालाब में पानी कम होने से वह तालाब के मध्य में पहुँच गया। पानी के साथ तालाब के बीच में कीचड भी खूब था और वह धँसता चला गया। जितना वह बाहर निकलने का प्रयास करता उतना ही अधिक अंदर फॅसता जाता था। वह बहुत घबराया और जोर-जोर से चिंघाडने लगा। उसकी चिंघाड सुनकर सारे महावत इक्ट्ठे हो गये। परंतु वे उसकी दयनीय दुर्दशा को देखकर चिंतित हो गये। उसे निकालने के लिये अनेक प्रयास किये गये परतु सारे प्रयास निष्फल सिद्ध हुए।

आखिर महावतो ने बड़े-बडे भाले भोंके ताकि जिसकी चुभन से वह अपनी शक्ति को इकट्ठी करके बाहर निकल जाय परन्तु उन भालों ने उसके शरीर को और भी कष्ट पहॅुचाया। जिससे उसकी आँखो से आँसू बहने लगे। जब यह समाचार राजमहल में राजा के कानो में पड़े तो वे भी शीघ्र गति से वहॉ पहॅुचे।

अपने प्रिय हाथी को ऐसी हालत में देखकर राजा के ऑखों से ऑसू बहने लगे। कुछ सोचकर राजा ने

कहा- "बूढ़े महावत को बुलाया जाय।" बूढ़े महावत ने आकर राजा को सलाह दी कि हाथी को बाहर निकालने का एक ही तरीका है कि बैड लाओ युद्ध का नगाडा बजाओ और सैनिको की कतार इसके सामने खडी कर दो। राजा ने तुरन्त आदेश दिया कि युद्ध का नगाडा बजाया जाय और सैनिको को अस्त्र-शस्त्र के साथ सुसज्जित किया जाय। कुछ ही घंटो मे सारी तैयारियॉ हो गयी। जैसे ही नगाडा बजा और सैनिकों की लम्बी कतार इस प्रकार कूच करने लगी कि जैसे वे शत्रु पक्ष की ओर से लोहश्रृग की ओर बढ रहे हो। यह दृश्य देखकर उसे तुरन्त ही यौवन काल का जोश आ गया। वह जोर से चिघाडा और शत्रुपक्ष की सेना पर आक्रमण करने के लिये पूरी शक्ति से कीचड को रौंदता हुआ तालाब के तट पर आ पहुॅचा। युद्ध के बाजे बजे और वह रुका रह जाये ऐसा कभी नही हुआ था।

यह कथा सुनाकर तथागत ने भिक्षुको से कहा-'संसार मे मनोबल ही प्रथम है। आत्मविश्वास जाग उठे तो असहाय और अवश प्राणी भी असभव होने वाले कार्य कर दिखाते है। जिसका मनोबल जागृत हो गया उसको दुनिया की कोई भी शक्ति रोक नही सकती। मनोबल जितना अधिक होगा उतना ही हमारा सम्बन्ध आत्मा की अनत शक्ति के साथ गहरा होता जायेगा।

18 जीवन संदेश

यह जीवन है एक फूल
इसे कभी शूल मत कहना
खुशबू किसी को दे न सको तो
दिल में किसी के मत चुभना

प्रवचनांश

- संसार तो सिर्फ आयोजन और संयोजन की सामग्री दे सकता है किन्तु जीने का ढ़ग तो स्वयं को ही सीखना होगा।
- जीने के इन्तजाम जुटाते-जुटाते जिंदगी की शाम हो जाती है। इस तरह हमे जीवन सस्ता मालूम पडता है और जीने की सामग्री महंगी लगती है।
- प्रत्येक व्यक्ति उम्र भर जो आपाधापी कर रहा है वह जीने के लिए कर रहा है या करने के लिए जी रहा है?
- इस संसार मे किसी की भी यात्रा पूरी नहीं हो सकती, सारी सुविधाएँ इकट्ठी हो जाती है। पर जीने का वक्त नहीं आता।

18 जीवन संदेश

किसी शायर ने अपने जीवन का रहस्य दो पंक्तियों में बताया जो व्यक्ति के जीवन का यथार्थ है-

जीवन खत्म हुआ तो जीने का ढंग आया ।
जब शम्मा बुझ गई तो महफिल में रंग आया ।।

अक्सर लोग सोचते हैं कि पहले जीवन जीने के साधन जुटालें फिर मौज करेंगे। तैयारियाँ तो कई वर्षों की हो जाती हैं लेकिन उसे आनदपूर्वक जीने के लिए कोई मौजूद नहीं रहता। संसार तो सिर्फ आयोजन और सयोजन की सामग्री दे सकता है किन्तु जीने का ढंग तो स्वय को ही सीखना होगा।

ज्ञानियों का कथन है कि इस जीवन को दो ढंग से जीया जा सकता है। एक तो है फूटी हुई बाल्टी की तरह जीना। जैसे फूटी हुई बाल्टी को कुएँ मे डालो तो वह पानी से भरी हुई दिखाई देती है, जिसके भरने में शोरगुल तो बहुत होता है पर उसे ऊपर खींचों तो छिद्रों के द्वारा पानी गिरना शुरु हो जाता है। जब तक वह कुएँ से बाहर आती है तब तक वह खाली हो जाती है।

कुछ लोगों का जीने का ढग इस छिद्र युक्त बाल्टी जैसा है जो मात्र साधनो को जुटाने की व्यवस्था में ही इस बहुमूल्य जीवन को खो देते है। आज सभी की जीवन शैली ऐसी विकृत हो गई है जैसे किसी ने शक्कर मे धूल मिला दी हो। आश्चर्य तो यह है कि हमने व्यर्थ के साथ इतना

तादात्म्य कर लिया है कि सार-असार, अर्थ-व्यर्थ और सार्थक-निरर्थक को छांटना ही मुश्किल हो गया है।

जीने का दूसरा ढंग छिद्र रहित बाल्टी जैसा है। छिद्र रहित बाल्टी को कुएँ में डालो तो बिना किसी शोरगुल के वह भर जाती है और जब खींचो तब पानी को लेकर ऊपर आती है। ऐसा छिद्र रहित जीवन उनका हो सकता है जो जीवन की बहुमूल्य संपदा को अल्पमूल्य के पीछे नहीं गँवाते।

प्रश्न होना स्वाभाविक है कि जीवन की बहुमूल्य संपदा व्यर्थ कैसे हो जाती है? इसका उत्तर यह है कि अक्सर हम जीवन के अमूल्य क्षणों को जीने के इन्तजाम जुटाने में ही गंवा देते हैं। साधारणतया रोटी, कपडा और मकान हमारी जीविकाएँ हैं। इन्हें जुटाते-जुटाते जिंदगी की शाम हो जाती हैं। आदमी चाहता है कि आज धन इकट्ठा कर लूँ और कल जी लूँगा। आज मकान बना लूँ कल आनंद से रहूँगा किन्तु कल कभी आता नहीं। धन इकट्ठा करते-करते एवं मकान बनाते-बनाते जिंदगी ढल जाती है। इस तरह हमें जीवन सस्ता मालूम पडता है और जीने की सामग्री महंगी लगती है। कहा भी है-

आगाह अपनी मौत से कोई बसर नहीं ।
सामान सौ बरस का पल की खबर नहीं ।।

यह प्रश्न हर प्रज्ञाशील-मानस मे पैदा होगा कि प्रत्येक व्यक्ति उम्र भर जो आपाधापी कर रहा है वह जीने के लिए कर रहा है या करने के लिए जी रहा है? यदि वह जीने के लिए कर रहा है तो सब कुछ ठीक है। फिर उतना ही

करना पर्याप्त है जितने से जीया जा सके, ज्यादा क्यों करें? अधिक इंतजाम जुटाने का कोई अर्थ नहीं है। संत मलूकदास ज़ी कहते थे-

अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम ।
संत मलूका कह गये सबके दाता राम ।।

अजगर अपनी जगह पडा रहता है तो भी भोजन मिल जाता है, पंछी भी नौकरी-चाकरी करने नहीं जाते फिर भी दाने चुगने को मिल जाते हैं। जीते तो पशु-पक्षी भी हैं पर इतजाम नहीं जुटाते सिर्फ मनुष्य ही कम जीता है। करने- धरने से फुरसत मिले तो जीएँ अन्यथा वह कैसे जीएँ?

कहते हैं जब सम्राट् सिकन्दर हिन्दुस्तान आया करता था तब वह प्रसिद्ध दार्शनिक संत डायोजनीज से मिला करता था। एक बार संत डायोजनीज ने उससे पूछा- "तू कहॉ जा रहा है?" तब सिकन्दर ने बडे रोब से कहा- "मै विश्वविजय के लिए निकला हूँ।"

संत डायोजनीज ने कुछ आश्चर्य के साथ पूछा- "सिकन्दर! सर्वप्रथम किस देश पर विजय प्राप्त करना चाहता है?"

सिकन्दर ने तत्काल उत्तर देते हुए कहा- "ईरान" यह सुनकर संत ने तीसरा प्रश्न पूछा- "सिकन्दर ! तू ईरान पर विजय प्राप्त करके क्या करेगा?"

अब सिकन्दर ने कुछ ऊँचे स्वर में कहा- "इसके बाद मै भारत पर विजय प्राप्त करूँगा और इस प्रकार सारे एशिया

पर अपना अधिकार जमाना चाहूँगा। उसके पश्चात् मैं शान्ति से बैठकर आराम करुँगा।

यह संवाद समाप्त होते ही सिकंदर ने संत डायोजनीज से प्रश्न किया- "आप अकेले इन पहाड़ी गुफाओं में क्या कर रहे हैं?"

डायोजनीज ने खूब खिल खिलाकर हँसते हुए कहा- "बेटा ! मैं यहाँ आराम कर रहा हूँ। तुम तो अभी इतना उपद्रव करके फिर आराम करोगे। जब आखिर में तुझे भी आराम ही करना है तो व्यर्थ में यह प्रपंच करने की कहाँ जरुरत है?"

इस संसार में किसी की भी यात्रा पूरी नहीं हो सकती। सभी को अधूरे में ही जाना पडता है और यही हुआ सम्राट् सिकन्दर हिन्दुस्तान से लौटकर वापिस यूनान नहीं पहुँच सका।

इस दुनिया में सुविधाएँ इकट्ठी हो जाती हैं। पर जीने का वक्त नहीं आता। सारा साज सामान इकट्ठा हो जाता है पर बजाने का वक्त नहीं आता। ऐसा समझो कि जैसे कोई संगीतज्ञ अपनी वीणा का साज बिठा रहा है, परन्तु अभी शुरु नही हुआ। यदि मनुष्य की स्थिति को ठीक से जानना हो तो मनुष्य ऐसा है जैसे किसी ने तीर्थ-यात्रा जाने की तैयारी कर ली हो। बिस्तर-पेटी, भोजन-सामग्री तैयार है और अब वह भूल बैठा है कि कहॉ जाना है और किसलिए यह तैयारी की है फिर वह सारा सामान खोलकर अपनी-अपनी जगह रख देता है।

ऐसी हमारी दशा है। कितनी बार मनुष्य जन्म मिला लेकिन हर बार जब सारी तैयारी हो जाती है तब मन में

प्रश्न पैदा होता है कि अब क्या करना है? फिर से सामान खोलकर रख लेते हैं ताकि दोबारा से तैयारी की जा सके।

एक जर्मन विद्वान् ने अपने घर में अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों का संग्रह किया। वह विभिन्न देशों से भिन्न-भिन्न भाषा की पुस्तकें मंगवाता था किन्तु यह उसका दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि वह एक भी पुस्तक का अध्ययन स्थिरता से नहीं कर सका। इसका कारण यह था कि वह सदा संचय में लगा रहता था। कभी चीन देश में चला जाता तो कभी लंडन। असाधारण पुस्तकें पाने के लिए कभी बर्मा और कभी श्रीलंका चला जाता था। फिर भारत, अफगानिस्तान, नेपाल आदि देशो से पुस्तकें संग्रह करने में उसने जिंदगी के सत्तर वर्ष बिता दिये। पढ़ना व सदा स्थगित कर देता था। यह सोचकर कि जब लाइब्रेरी पूरी हो जाएगी तो पढ लूंगा पर वह कभी पढ नहीं सका।

जीवन में धन कमा लिया, मकान बना लिया, पत्नी एवं बच्चों को खुश कर लिया, समाज में खूब प्रतिष्ठा अर्जित कर ली यानी साज सारा बिठा लिया। यह केवल जीवन का प्राक्कथन है, अभी जीवन का प्रारम्भ नहीं हुआ। जीवन का प्रारम्भ तो तब होगा जब हम साधक बनकर व्यर्थ के इन्तजाम से बचकर जीवन के अर्थ को सुरक्षित रख सकेंगे तभी जीवन का सम्पूर्ण सौन्दर्य खिल सकता है। ऐसा बोध भीतर में सदा बनाए रखे।

19 जब गुस्सा आये...

शांति रख दिल में हमेशा
छोड़ मत मर्यादा को
सर्द लोहा काट देता है
गरम फौलाद को

प्रवचनांश

- क्रोध का सीधा-सा अर्थ है दौड गये आग में दूसरे की तरफ और अक्रोध का मतलब है दौड आये आग से अपनी तरफ।
- आदमी की सबसे बडी भूल यह है कि वह इस बात को स्वीकार ही नहीं कर पाता कि क्रोध उसके भीतर से आ सकता है।
- यदि आपके भीतर क्रोध नहीं है तो दूसरों के अपशब्द निमित्त नहीं बन सकते।
- मेरे क्रोध का जिम्मेवार मैं स्वयं हूँ। दूसरा व्यक्ति मात्र मेरा निमित्त है अत मेरे क्रोध के निमित्त को में निर्दोष मानूँगा।

19 जब गुस्सा आये...

आज के मानव जीवन की ज्वलंत समस्या है 'क्रोध'। सभी की यही शिकायत है कि मुझे गुस्सा बहुत आता है। यह समस्या चाहे कोई छोटा हो या बडा, जवान हो या बूढा, गृहस्थ हो या सन्यासी सभी की है। हॉलाकि क्रोध करने का ढंग सबका अपना-अपना है। कोई खुलकर क्रोध कर लेता है। जिसे हम प्रत्यक्ष रुप से क्रोध करना कह सकते हैं। कुछ लोग अप्रत्यक्ष रुप से क्रोध करते हैं। जैसे खाना छोड़ देना, मुँह फूला लेना, बातचीत बन्द कर देना, एक कमरे मे बन्द हो जाना, दैनिक कर्तव्यों से पीछे हटना इत्यादि प्रवृत्तियों से स्वयं को संकुचित व शोषित करते है।

क्रोध का सीधा-सा अर्थ है, दौड गये आग में दूसरे की तरफ और अक्रोध का मतलब है दौड आये आग से अपनी तरफ। प्रत्येक मानस-पटल पर यह प्रश्न अवश्य उभरता है कि क्रोध कैसे मिटे? ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि सबसे पहले यह जानो कि क्रोध कहाँ से पैदा होता है? इसका उत्तर है कि क्रोध अपने ही भीतर की ग्रन्थि से उठता है। इससे एक बात स्पष्ट हो गई कि दूसरा व्यक्ति क्रोध का जिम्मेवार नही है क्योकि क्रोध का दूसरे से कोई सबध नहीं है। दूसरा व्यक्ति हमारे क्रोध का निमित्त है पर कारण नहीं हो सकता। निमित्त तो चिंगारी का कार्य करता है पर बारुद तो अपनी ही जलती है। आश्चर्य है कि आदमी अपनी जलती हुई बारुद को न देखकर चिगारी

को देखता हैं। क्रोध के असली जिम्मेवार हम स्वयं है।

अभी तक की हमारी जीवन शैली ऐसी रही है कि हम ने सदा अपने क्रोध का जिम्मेवार दूसरे को माना है। जब व्यक्ति दु:खी है तो वह समझता है कि दूसरा उसे दु:खी कर रहा है। आदमी की सबसे बड़ी भूल यह है कि वह इस बात को स्वीकार ही नहीं कर पाता कि क्रोध उसके भीतर से आ सकता है। ऐसी अवस्था में क्रोध की अग्नि भड़कती चली जाती है। जिस दिन यह समझ में आ जायेगा कि क्रोध के जिम्मेवार हम स्वयं है तब क्रोध का मूल कारण समझ में आ जायेगा।

कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि वैसे मैं क्रोधी नहीं हूँ किन्तु गलत बात मुझ से बर्दाश्त नहीं होती। अत: प्रसंगवश औषधि की तरह आवश्यक मानकर कभी-कभी क्रोध करना पडता है। बच्चा कुछ गलत कर दे तो नाराज होना पडता है। परिस्थितियाँ ऐसी बन जाती है कि क्रोध करना अनिवार्य हो जाता है। यानि जीवन जीने के लिए और संसार की व्यवस्थाओं को चलाने के लिए क्रोध करना जरुरी हो जाता है।

इस तरह के तर्क करना मात्र हमारी भ्रांति है। वास्तविकता तो यह है कि क्रोध भीतर मौजूद है इसलिए बाहर आता है। भीतर के क्रोध को मौके की तलाश है क्योंकि बिना मौके के यदि कोई क्रोध करेगा तो वह पागल समझा जायेगा। भीतर में क्रोध उपस्थित हो तो गाली निमित्त बन जाती है। ऐसा ही समझो जैसे कोई एक बाल्टी को रस्सी से बाँधकर कुएँ में डाल दे और ऊपर खींचे तो

बाल्टी पानी से भरकर बाहर आ जायेगी। तो क्या हम यह कहें कि इस बाल्टी में कुएँ ने पानी भर दिया? कुएँ में जल होगा तो बाल्टी लेकर ही लौटेगी यदि कुआँ सूखा हो और कोई बाल्टी डाले तो वह बाल्टी खड़खड़ाके वापिस लौट आयेगी।

ठीक इसी प्रकार अंतस् में क्रोध का पानी है तो कोई भी निमित्त रुपी बाल्टी उसे बाहर खींचकर ला सकती है। यदि क्रोध भीतर में है ही नहीं तो कोई कितने भी अपशब्द कहे हम नाराज नहीं होंगे। जो क्रोध करने की प्रतिक्रिया में उत्सुक रहता है वह मानसिक रुप से उलझनों का शिकर हो जाता है।

उलझनों का पहला लक्षण है- शरीर में होने वाली छोटी से छोटी घटना के प्रति संदेहशील हो जाना। जैसे किसी को लगता है मुझे खाना हजम नहीं हो रहा या गैस छाती में अटक रही है। दूसरा लक्षण है- जीवन और उसकी सभी घटनाएँ अर्थहीन हो जाती है। ऐसे में व्यक्ति अपनी सभी समस्याओं का हल आत्महत्या मे खोजता है। तीसरा लक्षण है- जानलेवा जोखिम भरे कामों मे प्रवृत्ति। तेज रफ्तार से कोई वाहन चलाना, पहाड की दुर्गम चोटियों पर चढ़ना आदि। चौथा लक्षण है- हमेशा अपने भीतर कमजोरी महसूस करना। पॉचवा लक्षण है समस्या की भयानकता की कल्पना करके उदास और चिंतित रहना। उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर कहा जा सकता है कि क्रोधी व्यक्ति मानसिक उलझनों मे उलझकर दुश्चिन्ता (Anxiety), तनाव (Stress) और अवसाद (Depression) से त्रस्त होकर अंतर्नाद

करने लगता है।

प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक सुकरात एक दिन अपने घर में बैठे हुए कुछ युवकों से चर्चा-वार्ता कर रहे थे। तभी उनकी पत्नी आवेश में तमतमाती हुई कमरे में दाखिल हुई और सुकरात को अपशब्द कहने लगी। दरअसल बात यह थी कि सुकरात घर का कोई जरुरी काम करना भूल गये थे। सुकरात ने पत्नी को प्रेम से समझाने की बहुत कोशिश की किन्तु उसका पारा तो और भी चढ़ गया। अब तो वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी।

आखिर हारकर सुकरात ने हाथ हिलाकर उसे कमरे से बाहर जाने का इशारा किया। सुकरात के इस इशारे से वह आपे से बाहर हो गई। बाहर न जाकर उसने पास में ही रखा हुआ पानी से भरा घड़ा उठाया और सुकरात के सिर पर उँड़ेल दिया। यह देखकर सारे युवक स्तब्ध रह गये। वे यह सोचकर सहम गये कि अब जरुर इन दोंनो में खूब लडाई होगी परतु सुकरात के चेहरे पर मुस्कान थी।

उन्होंने हँसते हुए युवकों से कहा "बच्चो ! मेरी पत्नी बिलकुल प्रकृति के नियमानुसार चलती है। तुम भलीभॉति जानते हो कुदरत के इस नियम को– बादल गरजने के बाद बरसते हैं।" इस घटना से युवकों को प्रेरणा मिली कि यदि अपने भीतर क्रोध नही है तो दूसरों के अपशब्द निमित्त नहीं बन सकते।

वीतराग-वाणी का भी यह संदेश है कि यदि सामने वाले व्यक्ति में आप अग्नि देखो तो उस समय तुम स्वयं

पानी बन जाना। यही भाव गुजराती कविता की दो पंक्तियों में दर्शाये हैं-

सामो थाय आग तो तमे थाजो पानी ।
ऐवी प्रभु वीरनी एक ज वाणी ।।

अग्नि का चाहे कितना ही प्रज्वलित रुप हो किन्तु पानी की शीतलता उसे स्वयं में समा लेती है, उसके तीव्र प्रकोप को शान्त कर देती है। क्रोध के बदले में क्रोध करना भीतर की कमजोरी का लक्षण है। क्रोध का अर्थ ही यह है कि अब बुद्धि की सीमा चूक गई है। और उत्तेजित होकर बुद्धु होने को हम तैयार हो गये है इसलिए किसी अंग्रेज विचारक ने कहा है कि Anger is the madness of the mind. यानि क्रोध मन का पागलपन है। क्रोधी ओर पागल में भेद समय का है, गुण का नहीं। इसलिए पागलपन का अर्थ है स्थायी क्रोध।

क्रोध मिटाने के लिए पूर्व निवारण ज़रुरी है। जो बहुत बुद्धिमान् है वह क्रोध आने से पहले उपचार करेगा। जिंदगी में गहन संघर्ष है तो कोई हमें गाली भी देगा, कोई अपमान भी करेगा, कोई प्रतिकूल व्यवहार भी करेगा ऐसे में पूर्व निवारण Antidote है। जब घर में आग लगी हो तब कुऑ खोदने का श्रम करना व्यर्थ है। जब कोई गाली दे तब शान्त होना मुश्किल है। श्रेष्ठ कुशलता तो पूर्व निवारण की है। जब मरीज बिलकुल मौत के करीब पहुँच जाय तब डॉक्टर को बुलाना व्यर्थ है। यह तथ्य ख्याल में रहे कि बीज से निपट लेना आसान होगा पर वृक्ष से निपटना कठिन है। हर चीज समय के साथ बडी

हो जाती है। इसलिए कल पर मत टालो।

क्रोध निवारण के कुछ संक्षिप्त सूत्र-

- मेरे क्रोध का जिम्मेवार मैं स्वयं हूँ, दूसरा व्यक्ति मात्र मेरा निमित्त है। अतः मेरे क्रोध के निमित्त को मैं निर्दोष मानूँगा।
- क्रोध की अवस्था में मौन रहकर अपना चेहरा दर्पण में देखें।
- अधिक क्रोध की अवस्था में सौ से उल्टी गिनती पढ़ना प्रारम्भ कर दें।
- क्रोध में एक गिलास पानी पी लें और अन्तिम घूँट को मुख में ही रखें। दो मिनट के लिए ना उसे गले के नीचे उतारे और न ही कुल्ला करें।
- क्रोध में स्थानांतरण भी लाभकारी है। स्थान बदलने से क्रोध का आवेग तत्क्षण उपशांत हो जाता है।
- प्रतिरात्रि चंद्रमा का ध्यान पाँच मिनट के लिए करें।

20 समय का महत्व

इन्सां खोके वक्त को पाता नहीं कभी
जो दम गुजर गया वह फिर आता नहीं कभी
सदा दौर-दौरा दिखाता नहीं
गया वक्त फिर हाथ आता नहीं

प्रवचनांश

- समय का महत्व दो कारणों से है। पहली बात तो यह कि समय कभी रुकता नहीं और दूसरा कारण यह कि समय कभी लौटता नहीं।
- समय का जो सार्थक उपयोग कर लेता है वह कण-कण से सुमेरु खडा कर लेता है।
- समय किसी का भी द्वार दोबारा नहीं खटखटाता।
- जितनी देर मे कॉफी उबलती है, उतनी देर तक के समय का उपयोग करके दार्शनिक लॉगफेलो ने 'इनफरनो' नामक ग्रन्थ का अनुवाद कर डाला।
- जो बीत गया है उसकी चिन्ता मत करो, जो अभी अनभिक्रान्त है वह तुम्हारे सामने आ रहा है उसको देखो।

20 समय का महत्व

जीवन में समय का बड़ा महत्व है। आज सारे संसार का ध्यान समय की ओर है। समय हमारी गति का, प्रगति का और हाल-चाल का केन्द्र बिन्दु बन गया है। समय का महत्व दो कारणों से है। पहली बात तो यह है कि समय कभी रुकता नहीं और दूसरा कारण यह कि समय कभी लौटता नहीं। चरम तीर्थंकर महावीर की अंतिम वाणी कहती है-

जा जा वच्चई रयणी न सा पडिनियत्तइ

अर्थात् जो दिन और रात्रियाँ बीत जाती हैं वे लौटकर नहीं आती। कहते हैं खोई हुई सम्पत्ति श्रम करने से दोबारा मिल सकती है। विस्मृत ज्ञान अध्ययन से ओर बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य दवाई से पुनः मिलेगा। लेकिन बीता हुआ समय फिर लौटकर नहीं आता।

समय का अर्थ है बदलना। यदि कोई चीज परिवर्तित न हो तो समय का बोध नहीं हो पायेगा। सुबह सूरज निकलता है फिर दोपहर होती है और फिर शाम हो जाती है। बच्चा था जवान हो गया, जवान से फिर बूढा हो गया। सरकना समय का स्वभाव है। पानी के सतत प्रवाह के समान ही समय की नदी का प्रवाह भी नहीं रुकता। तभी तो कहा है-

है समय नदी की धार कि जिसमें सब बह जाया करते है
है समय बड़ा तूफान प्रबल पर्वत झुक जाया करते है

अक्सर दुनिया के लोग समय में चक्कर खाया करते हैं
लेकिन कुछ ऐसे होते हैं जो इतिहास बनाया करते हैं।।

चार्ल्स फास्ट नामक मोची का काम करने वाला एक व्यक्ति अपने काम में से एक घटे का समय निकालकर प्रतिदिन गणित का अध्ययन करता रहता था। एक दिन ऐसा आया कि वह अमेरीका का प्रसिद्ध गणितज्ञ बन गया।

जितनी देर में कॉफी उबलती उतनी देर तक के समय का उपयोग करके दार्शनिक लॉंगफैलो ने 'इनफरनो' नामक ग्रंथ का अनुवाद कर डाला। गॅलेलियो ने अपनी डॉक्टरी जीवन की व्यस्तता में से समय निकालकर दूरबीन का अविष्कार किया था।

माईकेल फैराडे जिल्दसाज का काम करता था। खाली समय वैज्ञानिक प्रयोगों में लगाता और तरह-तरह के प्रयोग करके एक दिन जिल्दसाज से वैज्ञानिक बन गया। समय का जो सार्थक उपयोग कर लेता है। वह कण-कण से सुमेरु खडा कर लेता है और नदी की बहती धारा से अपार रत्नराशि प्राप्त कर लेता है।

समय किसी का भी द्वार दोबारा नही खटखटाता। कहा भी है- Time and tide Waits for none अर्थात् समय और लहरे कभी लौटकर नहीं आती। एक दार्शनिक चित्र-प्रदर्शनी देखने गया। वहॉं उसने चित्र-विचित्र, रग-बिरंगी, आकर्षक, मनमोहक इत्यादि अनेक चित्र देखे। एक चित्र उसने ऐसा देखा जो बडा अजीब और अनोखा था। उसे देखकर वह रुक गया। उस चित्र में आगे बाल थे, पीछे

गंजा था। और पैरों में पंख लगे हुए थे। उस चित्र के नीचे बड़े अक्षरों में लिखा हुआ था- मुझे पहचानकर मेरा नाम लिखिए।

कुछ लोग तो उस चित्र को देखकर आगे चल पड़ते थे तो कुछ पल दो पल के लिए रुक जाते थे। कुछ लोग जिज्ञासा से निहारने लग जाते थे परन्तु किसी को भी उसका रहस्य समझ मे नहीं आता था। अतः चर्चा-वार्ता करते हुए लोग आगे सरक जाते थे। उस दार्शनिक ने चिंतन की गहराई में उतरकर उस चित्र का नाम खोज लिया- 'यह समय का चित्र है।' समय के पैरों में पंख लगे होने से वह भागता है। आगे के बाल यह सूचित करते हैं कि आते हुए अवसर हमें दिखाई नहीं देते। पीछे जो बाल नहीं हैं वह यह इंगित करते हैं कि बीते हुए अवसर को पकडा नहीं जा सकता।

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का हर कार्य निर्धारित समय पर करना चाहिए। यह अनुभूत है कि समय पर स्टेशन नहीं पहुँचे तो गाडी छूट जाती है। समय पर गाडी चलाते हुए ब्रेक नही दबाया तो Accident हो जाते हैं। यदि किसान ने समय पर बीज नहीं बोये हो तो उसका साल बिगड जाता है। माली यदि समय पर पेड-पौधों को पानी न दें तो वे सूखने लग जाते हैं। समय पर भोजन नहीं किया तो स्वास्थ्य खराब हो जाता है। जैसे खेत सूखने पर वर्षा का मूल्य नही है, दीपक बुझने के बाद तेल डालना व्यर्थ है। इसी प्रकार समय बीत जाने पर पछताना व्यर्थ है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है-

का वर्षा जब कृषि सुखाने, समय चूकि पुनि का पछताने।

कहते हैं समुद्र में जब कोई तैरता है तो सामने हाथ रखता है। सामने हाथ फैलाकर आनेवाली लहरों को पकड़ता है। उन उछलती चंचल तरंगों पर हाथ रखकर वह आगे बढ़ता है। यदि वह तैराक लहरों की विपरीत दिशा में जो लौट चुकी है उन लहरों को पकड़ने की चेष्टा करें तो वह डूब जायेगा। इसलिए कहा है कि बीती हुई लहर को मत देखो सामनेवाली लहर को पकड़ो और उसके सहारे आगे बढ़ो। कहा भी है-

सुना है समय के पर होते हैं
पर मगर इतने निडर होते हैं ।
उड़ते हैं कहाँ जाते हैं कुछ पता ही नहीं
जो इन्हें पकड़ ले वही नर वीर होते हैं ।।

बैंजामिन फ्रैंकलिन की पुस्तकों की दुकान थी। एक बार एक व्यक्ति दुकान पर आया और उसने कर्मचारी से पूछा- "इस पुस्तक की कीमत क्या है?"

उस कर्मचारी ने अपने नित्य क्रम के अनुसार बता दिया- "सर! एक डॉलर।"

ग्राहक ने पूछा- "क्या इससे कुछ कम दाम में आप इसे नहीं दे सकते?"

कर्मचारी ने दृढ स्वर मे कहा- "जी, नहीं।" यह सुनकर ग्राहक वहाँ से चला गया।

थोडी देर मे इधर-उधर घूमकर वह दोबारा से उसी दुकान में आ गया और उसने पूछा- "क्या बैंजामिन फ्रैंकलिन

अंदर है? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

फ्रैंकलिन उस समय अंदर बैठे हुए थे। बुलाने पर वे बाहर आये तो उस आगन्तुक ने पूछा- "महाशय ! इस किताब की कीमत कम से कम क्या लेंगे?"

फ्रैंकलिन ने कहा- "सवा डॉलर।"

यह सुनते ही ग्राहक आश्चर्यचकित होकर बोला- "अभी-अभी तो आपके इस कर्मचारी ने इस पुस्तक का मूल्य एक डॉलर बताया था।"

फ्रैंकलिन ने विनम्रता से कहा- "जी, हाँ ! किताब की तो वास्तविक कीमत एक डॉलर ही है और जो चौथाई डॉलर है वह आपको मेरा वक्त नष्ट करने के कारण देना पडेगा।"

इतना सुनते ही आगन्तुक ने कहा- "अच्छा तो फिर एक कीमत बता दीजिए।"

फ्रैंकलिन ने कहा- "अब इस पुस्तक की कीमत डेढ़ डॉलर है और आप मेरा जितना भी समय नष्ट करेंगे उतनी ही कीमत बढती जायेगी।" यह कह कर वे भीतर चले गये। ग्राहक ने चुपचाप डेढ़ डॉलर देकर पुस्तक खरीद ली।

समय के उपयोग के लिए इतनी जागरुकता रखनेवाला ही उसका लाभ उठा सकता है। जो बीत गया है उसकी चिंता मत करो, जो अभी अनभिक्रांत है वह तुम्हारे सामने आ रहा है उसको देखो और उस आगत क्षण पर ध्यान केन्द्रित कर उसे सार्थक बना लो।

21 हँसते-हँसते जिएँ

है हँसी ही जिंदगी
यह जिंदगी कम न हो जाये
मुश्किलें हैं तो क्या हुआ
तू मुस्कराता चल....

प्रवचनांश

- मनोविज्ञान कहता है कि केवल वही हँस सकता है जो ऊबता है। मनुष्य ऊबता है इसलिए हँसी उसकी औषधि है।
- यदि आप स्वयं हँस रहे हैं और दूसरों को भी हँसा रहे है तो जानना कि आप मंदिर में हैं। हँसने-हँसाने से बड़ा कोई पुण्य नहीं है।
- दूसरों की मूर्खता पर तो अहंकार हँसता है किन्तु जब कोई अपनी मूर्खता पर हँसता है तो अहंकार टूटता है।
- नियति बड़ी है और हम उतना ही देख पाते है जितना देख सकते हैं।
- पहले प्रकार की हँसी से बचो, दूसरे प्रकार की हँसी को जी भरकर हँसो और तीसरे प्रकार की हँसी तक पहुँचने का लक्ष्य रखो।

21 हँसते-हँसते जिएँ

जीवन हँसने का एक अवसर है। हँसने की क्षमता अस्तित्व की बहुत बड़ी देन है जो इस धरातल पर सिर्फ मनुष्य को बख्शी है। पेड़-पौधे और पशु-पक्षी को हँसने की क्षमता प्राप्त नहीं है। इसलिए हँसना जीवन के विकास की बड़ी उन्नत अवस्था है। अपने जीवन को प्रफुल्लित करने के लिए यदि आप मुफ्त में मिले इस उपहार का स्वीकार नहीं कर सकते तो समझना कि आप सौभाग्यशाली नहीं हैं।

जीवन का एक साधारण नियम है कि हर चीज मन को थका देती है। प्रेम हो या घृणा ये सब मन के ही खेल है। हँसने के पीछे बड़ा गहरा राज है। मनोविज्ञान कहता है कि केवल वही हँस सकता है जो ऊबता है। पशु-पक्षी और पेड़-पौधे कभी नहीं ऊबते। मात्र मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो ऊबता है क्योंकि जितनी समझ विकसित होती है उतनी ऊब ज्यादा पैदा होती है। मनुष्य ऊबता है इसलिए हँसी उसकी औषधि है। हँसने से ही ऊब का प्रतिरोध किया जा सकता है।

भारत जैसे देश में दो ही चीजों की समृद्धि है-गरीबी और आबादी। अतः यहाँ हँसना एक ऐसी दवा है जो सबसे सस्ती है। किसी की जेब भरी हुई हो या खाली हो हँसना उसके लिए भारी नहीं हैं। निदा फजली ने कहा है-**"घर से यदि मंदिर दूर है तो किसी बच्चे को हँसा लो। यदि आप स्वयं हँस रहे है और दूसरों को भी हँसा रहे है तो जानना कि आप मंदिर में है।"** हँसने-हँसाने से बड़ा

कोई पुण्य नहीं है। एक चीनी लोकोक्ति बड़ी सुन्दर है-
A day of Sorrow is longer than a month of joy

अर्थात् गम का एक दिन हँसी-खुशी के एक महीने से लम्बा होता है।

आज के मनुष्य का जीवन तनाव, खिंचाव और बोझ के तले दबा हुआ है; जब कि प्रकृति कि हर चीज बोझहीन और तनाव से मुक्त है। यहाँ सिर्फ मनुष्य का ही चित्त ऐसा है जो तनाव के लबादों से लदा हुआ है। इस तरह आज की बोझिल और गमगीन जिंदगी में यदि सबसे बड़ा दान कोई होगा तो वह है हास्यदान। जिसने किसी को क्षण भर की हँसी दे दी उसने उस इंसान को सुख-चैन से जीने का सामान दे दिया। शैल चतुर्वेदी ने भी कहा है कि **"हँसी बांटते जीवन बीता हमसे कौन बड़ा है दानी।"**

प्रसिद्ध साहित्यकार लियो टॉलस्टॉय की कहानी है। एक बार मृत्यु के देवता ने पृथ्वी पर अपने किसी दूत को भेजा। एक स्त्री मर गई थी उसकी आत्मा को लाना था। देवदूत पृथ्वी पर आया और वह यह देखकर सोच में पड गया कि उस स्त्री की तीन छोटी-छोटी लडकियाँ जो कि जुड़वाँ थी उस मृत स्त्री के शरीर से लिपटकर बिलख-बिलख कर रो रही थी। उस स्त्री का पति तो पहले ही मर चुका था, परिवार में और कोई भी नहीं था। यह देखकर उस देवदूत को ख्याल आया कि इन तीन छोटी बच्चियों का क्या होगा? वह खाली हाथ वापिस लौट गया।

उसने जाकर मृत्यु के देवता से कहा-"मुझे क्षमा करिये, मैं उस स्त्री की आत्मा को न ला सका। यदि उन बच्चियों का बिलखना आप देखते तो आप भी खाली हाथ लौट

आते। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि उस स्त्री को कुछ दिन और जीने दिया जाय ताकि लड़कियाँ थोड़ी बड़ी हो जाय।"

मृत्यु के देवता ने कहा-"इसका मतलब यह हुआ कि तू उससे भी ज्यादा समझदार हो गया। जिसकी मर्जी से मौत होती है यह सोचकर तूने पाप किया है। और इसकी सजा भी तुझे मिलेगी। सजा यह है कि तुझे पृथ्वी पर जाना पड़ेगा और जब तक तू अपनी मूर्खता पर तीन बार हँस नहीं लेगा तब तक वापिस नहीं आ सकेगा।" कहते हैं दूसरों की मूर्खता पर तो अहंकार हँसता है किन्तु जब कोई अपनी मूर्खता पर हँसता है तो अहंकार टूटता है। देवदूत दण्ड भोगने के लिए राजी हो गया और पृथ्वी पर आ गया।

सर्दियों के दिन थे। एक चमार बच्चों के लिए कोट और कंबल खरीदने शहर की ओर जा रहा था। उसने देखा एक आदमी राह के किनारे खडा हुआ ठिठुर रहा है। यह आदमी वही देवदूत था। चमार को उस पर दया आ गई। अपने बच्चों के लिए कपडे खरीदने की बजाय उसने इस आदमी के लिए कंबल और कपड़े खरीद लिये। उस आदमी के पास खाने-पीने के लिए भी कुछ नहीं था और न ही रहने को घर था।

चमार ने उसको कहा-"तुम मेरे साथ चले आओ। अगर मेरी पत्नी तुम्हें देखकर नाराज हो जाय, चिल्लाने लगे तो तुम परेशान मत होना, थोड़े दिनो मे सब ठीक हो जायेगा।"

जैसे ही चमार देवदूत को लेकर घर पहुँचा तो देखते

ही पत्नी सख्त नाराज हो गई, उल्टा-सीधा बोलने लगी तब देवदूत पहली बार हँसा क्योंकि चमार की पत्नी यह नहीं जानती थी कि चमार एक ऐसे देवदूत को घर में ले आया है जिसके आते ही घर में हजारों खुशियाँ आ जायेगी। पत्नी तो इतना ही देख पा रही थी कि कोट-कंबल और बच्चों के कपड़े नहीं बनें। जो खो गया उसी पर उसकी नजर थी, जो मिला है उसका उसे कोई अंदाज नहीं था।

देवदूत ने सात दिन में ही चमार का सब काम सीख लिया। अब चमार के जूते इतने प्रसिद्ध हो गये कि वह देवदूत के प्रभाव से महिने भर में धनी हो गया। छह महिने में तो उसकी ख्याति सारे लोक में पहुँच गई कि उसके जैसा जूता बनानेवाला दूसरा कोई नहीं है। सम्राटों के जूते भी वहाँ बनने लगे।

एक दिन सम्राट का सिपाही आया और उसने कहा-"इस कीमती चमडे से सम्राट के जूते बनाने हैं, कोई भूल-चूक मत करना। ध्यान रहे, जूते ही बनाना कहीं स्लीपर मत बना देना।" क्योकि यह कहानी टॉलस्टॉय ने उस समय लिखी थी जब Russia में कोई आदमी मर जाता था तब उसे स्लीपर पहना कर मरघट तक ले जाया जाता था।

देवदूत ने कुछ सोच-समझकर स्लीपर ही बनाये, जूते नहीं बनाये। जब चमार ने देखा कि स्लीपर बने हैं तो वह क्रोध में आग-बबूला हो गया। लकड़ी उठाकर वह देवदूत को मारने को तैयार हो गया कि इस तरह तू हमें फॉसी पर लगवा देगा। तुझे कितनी बार समझाया कि स्लीपर मत बनाना।" तब देवदूत दूसरी बार हँसा। तभी सम्राट

का आदमी भागा हुआ आया कि जूते मत बनाना, स्लीपर बनाना क्योंकि सम्राट की मृत्यु हो गई है। भविष्य अज्ञात है यह जानकर चमार ने पैर पकड़कर देवदूत से माफी मांगी।

देवदूत ने कहा-"इसमें तुम्हारी कोई बात नहीं है, मैं अपना दंड भोग रहा हूँ।" हमसे बिना पूछे हमारी नियति घूम रही है और हम व्यर्थ में ही बीच में शोरगुल मचाते हैं।

एक दिन एक बुढ़िया तीन जवान लडकियों को लेकर जूतों का Order देने चमार की दुकान पर आयी। उन तीनों की शादी थी। बुढ़िया खूब धनी थी। उसने कहा-"कीमत की कोई बात नहीं, जूते बढ़िया होने चाहिए।"

देवदूत पहचान गया कि ये तीनों तो वे ही लडकियाँ है जिनको वह मृत माँ के पास छोड़ गया था और जिसकी वजह से वह आज दंड भोग रहा था।

उस बुढ़िया ने बताया कि ये मेरे पड़ौसन की लडकियाँ है। इनकी माँ तो इन्हें बचपन में ही निराधार छोड़ कर मर गई थी और मुझे दया आ गई। मेरे कोई बच्चे भी नहीं है अतः मैंने इन तीनों बच्चियों को पाल लिया। अगर इनकी माँ जिदा होती तो ये तीनों लडकियाँ गरीबी, भूख और दीनता-दरिद्रता में बडी होती।

मॉ के अभाव में ये प्रचुर धन-वैभव में पली और अब मेरी समस्त धन-संपदा की मालिक भी बनेगी। इनका विवाह भी सम्राट के परिवार मे हो रहा है।

यह सुनकर देवदूत तीसरी बार हॅसा। नियति बडी है और हम उतना ही देख पाते है जितना देख सकते

है। देवदूत अपनी मूर्खता पर तीन बार हँस लिया उसका दंड पूरा हो गया था अतः वह देवलोक में चला गया।

हँसी तीन प्रकार की होती है। पहले प्रकार की हँसी वह है जब हम किसी ओर के ऊपर हँसते है। ऐसे में दूसरों पर किया गया व्यंग्य, अपमान या उपहास हमारे हास्य का विषय बनता है। जैसे कोई केले के छिलके पर फिसल कर गिरता है तो हमें हँसी आ जाती है। यह सबसे निकृष्ट और घटिया किस्म की हँसी होती है। गहराई से देखा जाय तो इस हँसी में हिंसा और प्रतिरोध के भाव छिपे होते है। ऐसा हास्य मनुष्य के नकारात्मक और रुग्ण मनोदशा का परिणाम है।

दूसरे प्रकार की हँसी वह होती है जब हम स्वयं पर हँसते है। यह हॅसी जीवन को निर्भार और तनाव-मुक्त करने में समर्थ है। जब व्यक्ति खुद पर हँसता है तब वह उसके जीवन का मूल्यवान क्षण होता है। ऐसे क्षण में वह घृणा, ईर्ष्या, अहकार, हिंसा और निम्नता से पार हो जाता है।

तीसरी हॅसी अस्तित्वगत है जो जीवन की यथार्थता के साथ जुडी है। जब मनुष्य संसार की असारता को और जीवन की क्षणभंगुरता को जानकर हँसता है। कोई प्रबुद्ध पुरुष ही ऐसी हॅसी हॅस सकता है। ऐसी हँसी साधक के लिए साधना में प्रेरणास्पद सिद्ध होती है।

ज्ञानियो का कथन है- पहले प्रकार की हँसी से बचो, दूसरे प्रकार की हॅसी को जी भरकर हँसो और तीसरे प्रकार की हॅसी तक पहुॅचने का लक्ष्य रखो।

22 संकल्प ! तेरी शक्ति

खुदी को कर इतना बुलन्द
कि हर तकदीर से पहले
खुदा बंदे से खुद पूछे
बता तेरी रजा क्या है ?

प्रवचनांश

- संकल्पशक्ति अणुशक्ति से भी अधिक प्रबल है, यही मनुष्य का संचालन करनेवाली मुख्य शक्ति है।
- संकल्प दृढ़ हो तो गंगोत्री ही सागर बन जाती है, क्योंकि संकल्प की कमी ही सागर की दूरी है।
- आज के मनुष्य की सबसे बडी कमी यह है कि उसके पास निर्णय करने की क्षमता नहीं है।
- हेलन केलर जो कि अंधी, बहरी और गूँगी थी फिर भी वह Ph.D. की डिग्री हासिल करके विश्वविख्यात बनी।
- मन में यदि लक्ष्य को पाने की छटपटाहट हो तो संकल्पशक्ति स्वतः ही संग्रहित और तीव्र हो जाती है।

22 संकल्प ! तेरी शक्ति

किसी विद्वान् ने कहा है- **सपने कभी पूरे नहीं होते और संकल्प कभी अधूरे नहीं रहते।** जीवन संकल्प में है; संकल्प के बिना जीवन स्वप्न है और संकल्प है तो स्वप्न भी सत्य हो जाते हैं। संकल्प ही वह कीमिया है जो कंकर-पत्थरों को हीरों में बदल देती है और उसके अभाव में प्राप्त अवसर भी चूक जाते हैं।

एक बीज का घनीभूत संकल्प ही उसे कष्ट, प्रतिकूलता और परिताप को सहने की क्षमता देता है। चाहे वह स्वेच्छा से सहन करें या मजबूरी से परन्तु वह बीज कभी घबराता नहीं। यदि संकल्प हो तो मार्ग सुगम हो जाता है। जीवन के अंतिम क्षण तक वह नन्हा सा बीज हर स्थिति में स्थिर रह कर उसे पार कर लेता है। वह न कभी इधर-उधर भागता है और न बचने का कोई गलत रास्ता खोजता है क्योंकि सभी प्रतिकूल स्थितियों को वह एक कसौटी समझता है। एक बीज की वृक्ष तक की यात्रा दुष्कर अवश्य है पर असंभव नहीं। बीज का संकल्प ही शक्ति बन जाता है। कमजोर बीज भी शक्तिशाली चट्टानो को संकल्प शक्ति के आधार से ही जीत लेता है। इसी प्रकार मनुष्य का दृढ़ संकल्प भीतर की सुप्त शक्तियों को जगानेवाला होता है। संकल्प दृढ़ हो तो गंगोत्री ही सागर बन जाती है क्योंकि संकल्प की कमी ही सागर की दूरी हो सकती है।

संकल्पशक्ति अणुशक्ति से भी अधिक प्रबल है। यही मनुष्य का सचालन करने वाली मुख्य शक्ति है। जैसे सूर्य की किरणें संग्रहित होकर अग्नि बन जाती हैं ऐसे ही संग्रहित

संकल्प शक्ति बन जाता है। लक्ष्य को पाने की छटपटाहट हो तो संकल्प शक्ति स्वतः ही संग्रहित और तीव्र हो जाती है। एक शायर ने भी कहा है–

संकल्प करे इंसान तो क्या हो नहीं सकता ।
वह कौन सा उकदा है जो हल हो नहीं सकता ।।

एक प्रख्यात देशनेता से किसी युवक ने पूछा- 'आपके समान महान् होने के लिये मुझे क्या करना चाहिए?'

नेता ने कहा-महान् होने के लिए न किसी साधना की जरुरत है और ना ही कोई कष्ट उठाने पड़ते हैं उसके लिए तो मात्र एक दृढ़ संकल्प की जरुरत है।

आज के मनुष्य की सबसे बड़ी कमी यह है कि उसके पास निर्णय करने की क्षमता नहीं है। जिसने निश्चय कर लिया उसका संकल्प हो गया। अगर आप ऐसा सोचे कि इस अंगुलि को पांच मिनिट तक सीधा रखा जाय तो आप पायेंगे कि पांच मिनिट में वह अनेक बार हिल जाती है क्योंकि भीतर के विचार में स्थिरता नहीं है। विचारो में स्थिरता पैदा होते ही वे सजीव हो उठते हैं। किसी भी निर्णय को टिकाने के लिए संकल्प बहुत आवश्यक है। यदि हम एक विचार पर दृढतापूर्वक स्थिर हो जाते हैं तो उसमें प्राण पैदा होते हैं और तब उन्हे कोई तोड़ नहीं सकता।

जब कभी अस्थिर मन से कोई निर्णय लिया जाता है तो निर्णय लेने से पूर्व ही उसके चित्त का एक कोना यह कहता है कि यह निर्णय बदलेगा और ऐसा खंडित चित्त ही दृढ़ नहीं रहने देता। संकल्प से अभिप्राय जहॉं काई द्वन्द्व नहीं, भीतर कोई दूसरा स्वर नही ऐसा एकीभाव।

एक कर्मवीर का संकल्प होता है- "ऐसा होना ही चाहिए

और मैं यह करके ही रहूँगा।" उसके इन शब्दों के प्रभाव से ही विचारों में दृढ़ता आ जाती है और यह दृढ़ता संकल्प बन कर एक दिन कार्य रुप में परिणत हो जाती है। हेलन केलर जो अंधी, बहरी और गूंगी थी फिर भी वह Ph.D की डिग्री हासिल करके विश्वविख्यात बनी। होमर जो कि अंधा था किन्तु उसने महाकाव्य को लिखकर दुनिया को चमत्कृत किया। डेमोस्थनीज तुतलाता था परन्तु वह दुनिया का प्रभावशाली वक्ता सिद्ध हुआ। सडोल्फ को बचपन में ही पैर में लकवा हो जाने से वर्षों तक शय्याग्रस्त रहना पड़ा था फिर भी उसने Olympic Games की दौड स्पर्धा में तीन स्वर्णपदक जीते और वीरता का नया Record स्थापित किया। इन सबकी संकल्पशक्ति को देखकर मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि धनबल, बाहुबल, बुद्धिबल और स्वास्थ्यबल का स्थान भी संकल्पबल ले सकता है।

संकल्पशक्ति का चमत्कार बताने वाली एक सत्य घटना है। सन् 1910 में जर्मनी की एक ट्रेन में 15-16 वर्ष का एक युवक यात्रा कर रहा था। उसके चेहरे पर एक अजीब सा भय व्याप्त था। क्योंकि वह पैसे के अभाव मे टिकिट नहीं ले सका था। परिस्थितियों का दास बना हुआ वह युवक घर से भाग निकला था। उस युवक का नाम था वुल्फ मैसिग। उसने अपनी आत्मकथा 'About Myself' में इस घटना को लिखते हुए बताया कि इस प्रसंग को मैं कभी नहीं भूल सकता क्योंकि इसने मेरी जिंदगी को बदला है।

कुछ देर के बाद टिकिट-चेकर ने उस डिब्बे मे प्रवेश किया तो वुल्फ मैसिग की सांसे तीव्र गति से चलने लगी। जब टिकिट-चेकर ने कठोर आवाज में कहा- "Young Man!

Your Ticket?"

यह सुनकर वह इतना घबराया कि उसने उसी क्षण पास में पड़ा हुआ अखबार का रद्दी टुकड़ा हाथ में लिया और आँखें बंद करके तीव्र संकल्प किया- 'यह टिकिट है, यह टिकट ही है' और उठाकर टिकिट चेकर को दे दिया। बाद में मन ही मन उस संकल्प को तीव्रता से दोहराता रहा कि हे भगवन्! यह कागज उस टिकिट-चेकर को टिकिट के रुप में ही दिखाई दे।

कहते हैं उस समय महान् आश्चर्य घटित हुआ और टिकिट–चेकर ने उस कागज पर हस्ताक्षर करके उसे लौटा दिया और बोला- 'When you have got the ticket why are you hiding yourself?' इस संकल्प के चमत्कार ने वुल्फ मैसिंग के जीवन को एक नया मोड़ दे दिया। इसके बाद उसने अपने दृढ़ संकल्प के अनेक अनहोने चमत्कार देखे।

मन में यदि लक्ष्य को पाने की छटपटाहट हो तो संकल्पशक्ति स्वतः ही संग्रहित और तीव्र हो जाती है। यह शक्ति सभी में है, यह शक्ति स्वरुपसिद्ध अधिकार है सिर्फ इसे जगाना है। कहा भी है फौलाद के बनो मिट्टी बनकर काम नहीं चलेगा। फूल कांटो में छिपे है पर कांटो को देखकर जो पलायन कर जाता है वह फूलो से भी वंचित रह जाता है।

संकल्पी-मानस की पुकार इस प्रकार की होती है-

अपने इन पैरों की मदद से ही मुझे चलना है।
अपनी इन आँखों की मदद से ही मुझे रास्ता खोजना है।
अपनी इस बुद्धि की मदद से ही मुझे दिशा निश्चित करनी है।
इसका साभार स्वीकार ही सफल यात्रा की पहली शर्त है।।

23 यह भी बीत जायेगा

कभी है पुरवा कभी है पछिवा
हवाएँ दुनिया का क्या भरोसा
यहाँ के फूलों पे हो न फिदा
न चार दिन ये वफा करेंगे

प्रवचनांश

- कोई भी दृश्य यहाँ स्थिर नहीं है, सभी में प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है।
- सारा दुःख एक ही बात का है कि हम परिवर्तन से बंधे हैं और परिवर्तन का अर्थ ही है कि सब बदलेगा और हम नहीं चाहते कि सब बदले।
- मानव-मन हमेशा एक गलती करता है। वह अनित्य को नित्य, संयोग को शाश्वत और विजातीय को सजातीय मानकर चलता है।
- यह संसार विपरीतता का जोड़ है। दिन-रात, जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, संपत्ति-विपत्ति, स्वास्थ्य-बीमारी सब एक-दूसरे में बदलते रहते हैं।

23 यह भी बीत जायेगा

इस सृष्टि का एक शाश्वत नियम है- परिवर्तन। यहाँ समय की गति के साथ सब कुछ गतिशील है। संसार में हर चीज बदलने की नियति से जन्म लेती है इसलिए सब कुछ बदल रहा है। वस्तु बदल रही है, व्यक्ति बदल रहा है, प्रकृति बदल रही है और स्थितियाँ भी बदल रही है! समय ने हर नई चीज को पुरानी और पुरानी को नष्ट किया है। महागीता में लिखा है-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत्।

अर्थात् असत् का अस्तित्व नहीं है और सत् का कभी नाश नही होता। विश्व की समस्त वस्तुओं पर विनाश का कलंक लगा हुआ है। शरीर राख बन जाता है, कपड़ा चिथड़ा बन जाता है, वस्तु टूट जाती है, बंगला खंडहर बन जाता है अर्थात् जो भी उत्पन्न होता है वह विनष्ट हो जाता है। एक यूनानी लोकोक्ति बड़ी प्रेरणास्पद है-

All things are born of earth; all things earth takes again.

अर्थात् सब कुछ मिट्टी से पैदा होता है और फिर मिट्टी में ही मिल जाता है। कोई भी दृश्य यहॉ स्थिर नहीं है, सभी में प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है। सारा दुःख एक ही बात का है कि हम परिवर्तन से बंधे हैं और परिवर्तन का अर्थ ही है कि सब बदलेगा और हम नहीं चाहते कि सब बदले। धन पाने के लिए लोग कितना दौडते है परन्तु पाकर भी क्या पाते हैं? हाथ तो खाली ही रहेगा फिर भी उसको पाने के

लिए कितने दुःख के बीज बोये जाते हैं जो अनन्त गुणा दुःख का फल लेकर आते हैं। न इस देह का भरोसा है न इस मन का, सब हर क्षण बदल रहा है। एक उर्दू शायर लिखता है-

मुझे दिल की धड़कनों का नहीं ऐतबार ।
कभी हो गये शिकवे, कभी बन गई दुआएँ ।।

समस्त दुःख इसी भ्रांति से जन्मते हैं कि जो भी मिला है वह सदा रहेगा। यदि परिवर्तनशीलता का बोध प्रतिपल बना रहे तो जीवन के सारे दुःख समाप्त हो सकते हैं।

मानव-मन हमेशा एक गलती करता है। वह अनित्य को नित्य, संयोग को शाश्वत और विजातीय को सजातीय मानकर चलता है। हाँलाकि हम इस बात को सिद्धांत से और व्यवहार से भी जानते हैं कि पदार्थ अनित्य है, संयोग क्षणिक है और पदार्थ विजातीय है।

एक बार राजा भोज शयन कक्ष मे अपनी शय्या पर सो रहे थे किन्तु उन्हें नींद नहीं आ रही थी। सहसा उनके मन में विचार आया कि मेरे राजवैभव में जो कुछ संग्रहित है उसे मे एक श्लोक में आबद्ध करुँ-

चेतोहरा युवतयः स्वजनोऽनुकूलः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरंगाः

इन तीन पदों में समस्त वैभव-विलास समा गया किन्तु श्लोक के चौथे पद का प्रणयन न हो सका। अतः बार-बार वे उसे दोहराते रहे ताकि पूरा हो सके, इसी क्रम में रात्रि

का अंतिम प्रहर भी आ गया। उसी समय राजमहल में एक चोर चोरी करने के लिये प्रविष्ट हो गया था। वह राजा भोज की शय्या के नीचे छिपा हुआ था, राजा के मुख से बार-बार श्लोक के तीन पद सुनते-सुनते चोर को अगले चौथे पद की स्फुरणा हो गई। उसने शय्या के नीचे से ही चौथे पद की पूर्ति के लिए उच्चारण किया-

सम्मीलने नयनयोः न हि किन्चिदस्ति

पूरे श्लोक का तात्पर्य यह है कि मनोहर स्त्रियाँ, अनुकूल कुटुम्बी, अच्छे बन्धु, प्रेमपूर्ण वाणी बोलने वाले नौकर, हाथियों के झुण्ड और अगणित चंचल घोड़े सुशोभित हो रहें हैं; परन्तु चौथे पद का भावार्थ यह है कि आँखें बंद हाने पर यह सब कुछ नहीं रहेगा।

चौथा पद सुनते ही भोज अत्यंत प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे बहुत सा धन पुरस्कार में दिया।

अतीत की ओर दृष्टिपात करें तो यह ज्ञान होगा कि बडे-बडे ऐश्वर्य संपन्न राजा-महाराजाओं के भंडार हीरे-जवाहरात, सोना-चॉदी और स्वर्ण-मुद्राओं से भरे रहते थे, विचित्र चित्रकारियों से सुसज्जित शोभनीय राजमहल और शीशमहल जिनके आवास थे; इस तरह भौतिक ऐश्वर्य का कोई पार नहीं होता था। यह सब प्राप्त सामग्रियॉ मात्र संयोग है जो अखिर में वियोग में परिणत हो जाती है। यह संसार विपरीतता का जोड़ है। दिन-रात, जन्म-मृत्यु, सुख-दु:ख, संपत्ति-विपत्ति, स्वास्थ्य-बीमारी सब एक दूसरे मे बदलते रहते हैं। यहॉ कुछ भी स्थिर और स्थायी नहीं है। एक शायर ने परिवर्तन के शाश्वत नियम का चिंतन

करते हुए एक शायरी लिखी है-

जिनकी मुंडेरो पर कल चाँद निकला करते थे ।
आज उनके मुंडेरो पर दीये भी नहीं जलते ।।

एक राजा ने देश-विदेश के समस्त विद्वानों को आमंत्रित किया। राजसभा में जब विद्वनों की गोष्ठी बैठी हुई थी तब राजा ने उन समस्त विद्वानों के सामने अपनी अंतर्जिज्ञासा को व्यक्त करते हुए कहा-"मैं एक ऐसा सूत्र जानना चाहता हूँ जिसमें समस्त धर्मग्रंथों का सार समाहित हो।"

सभी विद्वानों ने राजा के समक्ष अपने-अपने शास्त्रों से एक-एक सूत्र का चुनाव किया किन्तु राजा को कोई भी सूत्र रास नहीं आया। इस तरह राजा की जिज्ञासा अनसुलझी पहली बन गई। तब किसी बुजुर्ग सलाहकार ने राजा को सलाह दी- "राजन् ! राज्य-सीमा के बाहर एक फकीर रहता है, उनकी प्रज्ञा सधी हुई है, वे आपकी इस जिज्ञासा का समाधान करने में समर्थ है।"

राजा.ने फकीर के चरणों में पहुँचकर अंतर्जिज्ञासा व्यक्त की तब फकीर ने कहा- "राजन् ! मैं सूत्र के नाम पर तुम्हें अपनी भुजा पर बँधा यह ताबीज दे रहा हूँ। इसमें एक कागज का टुकडा है जिस पर मेरे ज्ञानी गुरू ने एक सूत्र लिखा है। इसे तुम पहन लो, लेकिन शर्त यह है कि तुम इसे अभी मत पढना। जब तुम्हे ऐसा लगे कि अब जीवन चारों तरफ से सकटग्रस्त है तब इसे खोलकर पढ लेना।" राजा ने फकीर की बात को प्रसन्न-चित्त से स्वीकार किया और महल लौट आया।

कुछ दिन बीत जाने के पश्चात् अचानक किसी पड़ौसी राजा ने देश पर हमला कर दिया। जब राजा युद्ध में हारने लगा तब वह अपने घोड़े पर बैठकर युद्ध भूमि से जंगल की तरफ भाग गया। राजा को भागते देखकर दुश्मन भी राजा का पीछा करने लगे। भागते-भागते शाम हो गई, अंधेरा पृथ्वी पर छाने लगा। अचानक राजा ने देखा आगे जंगल का रास्ता बंद है, चारों तरफ पत्थर और कँटीली झाड़ियाँ हैं। वह लौट भी नहीं सकता था क्योंकि पीछे शत्रु का डर था।

स्वयं को चारों ओर से संकटग्रस्त पाकर सहसा राजा को ताबीज याद आया। तुरन्त ही उसने ताबीज खोला, कागज पढ़ा और एक लंबी सांस ली। उसमें सूत्र लिखा था-" यह भी बीत जायेगा।"

राजा चिंतन करने लगा कि यह सूत्र जीवन का कितना बड़ा सच उजागर करता है। न मैं राजा रहा और न ही मेरा ऐश्वर्य भरा राज्य रहा। जीवन के समस्त सुख भी हाथ से फिसल गये तो यह दुःख, आपत्ति और निराशा का समय भी अधिक देर तक नहीं रहेगा। यहाँ सब कुछ व्यतीत होता है तो फिर मैं अपने हारे हुए राज्य को लेकर चिंतित क्यों रहूँ? और प्राप्त होने पर उसमें आसक्त क्यों रहूँ? यह सोचकर राजा आश्वस्त हो गया।

यह अनमोल सूत्र सभी मनुष्य के चेतन मन से अचेतन मन में गहरा चला जाय तो सभी की आत्मा जाग्रत हो सकती है। यह चिंतन दुःख की पीडा और ममत्व के बंधन को शिथिल कर सकता है।

24 जीवन कला

जीवन मिला है तो जीना सीखो
कपड़ा फट भी गया है तो सीना सीखो
आदमी बने हो तो रोने से क्या होगा
जीवन यदि जहर है तो पीना सीखो

प्रवचनांश

- जन्म से तो कोई बना-बनाया पैदा नहीं होता। जन्म से तो सभी अनगढ़ पत्थर हैं परन्तु कला ही उसे एक नया रुप देती है।
- समस्त कलाओं में धर्मकला श्रेष्ठ है क्योंकि वह जीवन जीने की कला सिखाती है और आत्मा के दर्शन कराती है।
- कला से तो विष भी अमृत बन जाता है। बिना कला के वस्तु कभी उपयोगी नहीं होती; वस्तु का सही उपयोग करना भी एक कला है।
- जीवन–कला भी नीरस को सरस, दु:ख को सुख और कुछ भी नहीं को सब कुछ बनाने वाला एक अद्भुत चमत्कार है।

(24) जीवन कला

जीवन में कला का बड़ा महत्व है। जिस प्रकार वीणा में संगीत की संभावना है तो विसंगति की भी पूर्ण संभावना है। वीणा यदि कुशल हाथों मे होगी तो गीत पैदा होगा और अकुशल हाथों में होगी तो शोरगुल होगा। जीवन भी एक कला है। मनुष्य अपने जीवन का कलाकार भी है और कला का उपकरण भी है। जो अपने को जैसा बनाता है वैसा ही पाता है। जन्म से तो कोई बना-बनाया पैदा नहीं होता। जन्म से तो सभी अनगढ़ पत्थर हैं। परन्तु कला ही उसे एक नया रुप देती है। महात्मा गांधी ने कहा है-'कला जीवन और आत्मा को मांजती है।' साधारण कला वह है जिसमें चित्रकार अपने मनोभावों को चित्र में, मूर्तिकार मूर्ति में और संगीतकार गीत में पिरो देता है। इसे Subjective Art कहते हैं। ताजमहल या अजंता-एलोरा की गुफाओं में Objective Art दृष्टिगोचर होती है।

चिंतकों ने कला के संबंध में कहा है-

कला बहत्तर जगत में, जा में दो सिरदार ।
एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार ।।

बहत्तर कलाओं में दो प्रमुख कलाएँ हैं। एक है आजीविका जुटाने की कला और दूसरी है आत्म-उद्धार की कला। वैसे बहत्तर कलाओं को तीन भागों में विभाजित किया गया है। कला का प्राथमिक स्तर वह है जो शरीर की आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। मध्यम स्तर की कलाएँ वे हैं जो मन और बुद्धि की इच्छाओं को संतुष्ट करती हैं। उत्कृष्ट कला

वह है जो आत्मा का कल्याण कराती है। इसलिए भारतीय ऋषि-मुनियों ने कहा-

सव्व कला धम्मकला जिणाइ

अर्थात् समस्त कलाओं में धर्मकला श्रेष्ठ है। क्योंकि वह जीवन जीने की कला सिखाती है और आत्मा के दर्शन कराती है। सबसे महान् कलाकार वह है जो जीवन को ही कला का विषय बनाकर जीवन के सभी क्षणों को आनंदमय बना सके।

कोई भी कला श्रम नहीं बौद्धिकता मांगती है। एक Factory का मालिक चिंतित था। उसकी चिंता का कारण यह था कि अनेक प्रयास के पश्चात् भी Factory की प्रमुख मशीन चल नहीं रही थी। आखिर उसने किसी मैकेनिक को बुलाया। उस मैकेनिक ने सूक्ष्मता से मशीन के सभी पुर्जों का निरीक्षण करते हुए एक हथौडा मशीन के एक पुर्जे पर मारा और मशीन चल पड़ी। यह देखकर मालिक हैरान हो गया और और बड़ी प्रसन्नता से कहने लगा-"वाह ! आपने तो कमाल ही कर दिया। एक हथौडा मारा और मशीन चल पडी।"

हँसते हुए मैकेनिक ने हजार रुपये की मांग की तो मालिक चकराया। उसने पूछा- "सिर्फ एक हथौडा मारने का हजार रुपया मांगते हो?" तब मैकेनिक ने कहा- "हथौडा मारने का तो एक ही रुपया है और 999 रुपये तो हथौड़ा कहाँ मारना है उसके लिये है।" कोई भी वस्तु, अवसर व परिस्थिति कला से जुडकर स्वर्णिम बन जाती है।

बिना कला के वस्तु कभी उपयोगी नहीं होती। वस्तु

का सही उपयोग करना भी एक कला है। जिस औषधि को शरीर पर लगाने से आराम मिलता है यदि उसे पी लिया जाय तो वह प्राणघातक भी बन सकती है। कला से तो विष भी अमृत बन जाता है। मूर्तिकार अपनी कला से पाषाण को भी भगवान बना देता है। जो वाद्य को बजाना ही नहीं जानता हो उसके लिये श्रेष्ठ वाद्य भी काष्ठ ही है। इसी प्रकार जीवन-कला भी नीरस को सरस; दुःख को सुख और कुछ भी नहीं को सब कुछ बनाने वाला एक अद्‌भुत चमत्कार है।

किसी गांव में चार मित्र रहते थे। उनमें मैत्री सम्बन्ध काफी अच्छा था। वे लकड़ी बेचकर जीवन का निर्वाह किया करते थे। परस्पर सहयोग देना और लेना उनके जीवन की शैली थी। एक दिन चारों ने मिलकर कुछ विचार-विमर्श किया और पूरी तैयारी के साथ जंगल में लकड़ी काटने चल पड़े। उनकी आपसी व्यवस्था ऐसी बनी कि तीन मित्र तो लकडी काटने के लिये जंगल में जायेंगे और एक मित्र वहीं रहेगा ताकि खाना बना सके।

तीनों मित्रों ने जाते समय भोजन बनाने वाले मित्र को सूचित किया कि जब तुम्हें अग्नि की जरुरत पड़ेगी तो इस अरणि की लकडी से निकाल लेना। कुछ देर के बाद भोजन बनाने का उचित समय जानकर उस मित्र ने सारी सामग्री जुटाई। जब अग्नि जलाने का समय आया तो उसने मित्रों के कथनानुसार अरणि लकड़ी को हाथ मे लिया। ऊपर से नीचे तक उसका निरीक्षण किया किन्तु उसे कहीं अग्नि दिखाई नहीं दी। फिर उसने लकडी के टुकड़े-टुकड़े करके अग्नि की खोज की परन्तु उसे कहीं से भी अग्नि नजर नहीं आई।

आखिर वह सोच में पड़ गया और थककर सो गया।

तीनों मित्र लकड़ियाँ काटकर लौटते हुए यह सोच रहे थे कि जाते ही भोजन तैयार मिलेगा। परन्तु वे यह देखकर हैरान हो गये कि मित्र तो आराम से सो रहा है और आसपास भोजन की सामग्री बिखरी हुई है।

मित्र को जगाकर तीनों ने पूछा- "भाई ! मामला क्या है? अब तक खाना क्यों नहीं बनाया?"

वह निराशा से बोला- "मित्र ! तुम लकड़ी कैसी दे गये थे जिसमें अग्नि बिलकुल भी नहीं थी। मैंने इस लकड़ी के टुकडे-टुकडे कर डाले पर कहीं अग्नि नहीं मिली तो आखिर हारकर मैं सो गया।"

इतना सुनते ही मित्रों को बात समझते देर नहीं लगी कि अरणि की लकड़ी से अग्नि कैसे प्राप्त की जा सकती है इस विधि का इसे बोध नहीं है। एक मित्र ने उस अरणि की लकड़ी को हाथ में लेकर उसके दो टुकड़े किये और उन्हें आपस में रगडा तो अग्नि प्रकट हो गई। इस प्रक्रिया को देखकर उस मित्र को विधि का ज्ञान हो गया और वह समझ गया कि साधन प्राप्त होने पर भी जब तक उसकी विधि का पता नही हो तब तक उसका उपयोग नहीं हो सकता।

जन्म मिलने के बाद जीवन की विधि का ज्ञान होना बहुत जरुरी है। अधिकांश लोग जीने की कला के अभाव में जीवन व्यर्थ कर देते हैं। इसलिये किसी शायर ने बिलकुल सत्य ही कहा है-

नशा हर चीज में होता है हमें पीना नहीं आया ।
जिन्दगी खूबसूरत है हमें जीना नहीं आया ।।

25 क्षमा करे वही महान्

भला हुआ हो चाहे बुरा उसे भूला दीजिए
भीतर के जीवन-पुष्प को खिला लीजिए
प्यार से पड़ी हो चाहे खार से पड़ी हो
जो गांठे पड़ी हो उसे खोल लीजिए

प्रवचनांश

- क्षमा से सभी ग्रंथियाँ सुलझ सकती है, सभी जख्म भर सकते हैं और सभी व्यक्तियों से मधुर संबंध बन सकते हैं।
- क्षमा का अर्थ है चित्त की एसी दशा जहाँ क्रोध व्यर्थ हो जाता है। क्षमा मनोमस्तिष्क का ऐसा Air-condition Fitting है जहाँ क्रोध की गरमी का असर ही नहीं होता।
- अहंकार हमें क्षमा मांगने से रोकता है और तिरस्कार क्षमा देने में बाधक बनता है।
- आज के युग में मनुष्य की क्षमा खोखली, झूठी और औपचारिक बनकर रह गई है। इस औपचारिकता ने संबंधों को खोखला, व्यक्तित्व को झूठा और मनुष्य को बड़ा चालबाज बना दिया है।

25 क्षमा करे वही महान्

इस क्षणभंगुर जीवन में व्यक्ति न जाने कितनी ग्रन्थियों को अपने भीतर संजोये रखता है; कितने ही जख्मों को अपने अंतस् की गहराई में पालता है और अनेक व्यक्तियों से अनबन के प्रसंग बना लेता है। परिणामतः उसकी जीवन-यात्रा सानंद व्यतीत नहीं हो सकती। मन की ऐसी स्थिति में परमात्मा महावीर ने मन का समाधान सूत्र 'क्षमा' को बताया है। क्षमा से सभी ग्रन्थियाँ सुलझ सकती हैं, सभी जख्म भर सकते हैं और सभी व्यक्तियों से मधुर संबंध बन सकते हैं। ऐसी बहुत सी बातें होती हैं जिन्हें क्षमा कर देने से स्नेह-सलिल बहने लगता है। कहा भी है-

महक उठेगी दुनिया सारी,
यदि क्षमा के फूल खिला लो।
वैर-विरोध मन के मिटाकर,
भीतर स्नेह का दीप जला लो।।

भूल हो जाना मानव मात्र का स्वभाव है लेकिन क्षमा करना दैवीय स्वभाव है। अधिकांश बाते ऐसी होती हैं जिनका क्षमा कर देने से अंत हो जाता है। क्षमा देकर जख्मों को भूल जाना बेहतर है क्योंकि याद रखने लायक और बहुत कुछ है। यदि जीवन में FORGET AND FORGIVE का मंत्र अपना लिया जाय तो क्षमा का लेन-देन स्वाभाविक बन जाता हैं जो व्यक्ति क्षमा नहीं करता वह जान-बूझकर अपने जख्मों को हरा रखने का पागलपन करता है।

क्षमा का अर्थ है चित्त की ऐसी दशा जहाँ क्रोध व्यर्थ

हो जाता है। क्षमा मनोमस्तिष्क का एक ऐसा Air-condition Fitting है जहाँ क्रोध की गरमी का असर ही नहीं होता। जहाँ न किसी की गाली चोट पहुँचा सकती है और ना ही दूसरों का अनुचित व्यवहार रोष पैदा कर सकता है। इस अवस्था में प्रतिक्रिया और प्रतिशोध के सिलसिले को विराम मिलता है। यह स्वाभाविक मानसिक प्रक्रिया है कि प्रतिकूलता की प्रतिक्रिया कुछ समय के पश्चात् प्रतिशोध में परिणत हो जाती है। अक्सर होता यह है कि प्रतिशोध में हम ईंट का जवाब पत्थर से देने का प्रयास करते हैं। फलस्वरुप अपने ईर्द-गिर्द पत्थरों का ढेर इकट्ठा कर लेते हैं। इस स्थिति मे क्षमा की आराधना ही समाधि दे सकती है। क्षमा का महत्व बताते हुए संस्कृत के एक श्लोक में कहा है-

नरस्याभरणं रुपं रुपस्याभरणं गुणः
गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानस्याभरणं क्षमा

अर्थात् मनुष्य का आभूषण रुप है, रुप का आभूषण गुण है, गुण का आभूषण ज्ञान है और ज्ञान का आभूषण क्षमा है।

क्षमा कर देना या अपनी गलती मान लेना समझदारी की बात है शरम की नहीं। हमारा अहंकार हमें क्षमा मांगने से रोकता है और तिरस्कार क्षमा देने में बाधक बनता है। क्योंकि क्षमा की लेन-देन में हम सामने वाले की योग्यता और अयोग्यता का ख्याल रखते हैं। अमुक व्यक्ति क्षमा मांगने या देने के योग्य है या नहीं ऐसा सोचना क्षमा करना नहीं होता। क्षमा के लिए पात्रता-अपात्रता का सवाल ही नहीं होता। वस्तुतः क्षमा कभी दूसरों को नही दी जाती; स्वयं को ही

दी जाती है। सवाल यह नहीं है कि हमने किसको गाली दी, सवाल तो यह है कि जैसा बीज बोया गया है वैसी ही फसल प्राप्त होगी।

एक किसान बैलों को गाली देने में बड़ा कुशल था। किसी महात्मा ने उसे शिक्षा देते हुए कहा- "अरे ! तू यह क्या कर रहा है? ये बैल तो बेचारे अबोध और मूक हैं।"

वह बोला- "महात्मन्! मैं इन्हें इसलिए गालियाँ दे रहा हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि ये बैल मुझसे बदला नहीं ले सकते। मैं निश्चिन्त हूँ क्योंकि कोई भी बैल बदले में मुझे गालियॉ नहीं लौटा सकता फिर इन्हें गालियाँ देने में हर्ज क्या है?

हमारा गणित भी बिलकुल इस किसान की तरह है। जो आदमी कमजोर व डरपोक है तो गाली वापिस नहीं लौटा सकता अतः उसे गाली देने में क्या हर्ज है? स्मरण रहे, जीवन मे जब भी हम बुरा करते है तो हम किसी के साथ कर रहे हैं ऐसा मानना बहुत बडी भ्रांति है क्योंकि यह बुरा हम अपने साथ ही कर रहे होते है।

बहुत छोटी सी जिदगी है इसमे न जाने कब यह चद सासों का सफर मुकाम पर पहुँचने से पहले ही खत्म हो जाय। ऐसे मे क्या तो किसी से दुश्मनी रखना और क्यों किसी के साथ मनमुटाव रखकर रुठ जाना। कवि रहीम ने भी अपने दोहे मे क्षमा भाव की प्रबल प्रेरणा देते हुए कहा है-

रुठे सुजन मनाईये जो रुठे सौ बार ।
रहिमन फिर-फिर पोहिये टूटे मुक्ताहार ।।

जो हमसे रुठ गया हो, नाराज हो, उदास हो या भयभीत हो तो उसे मुलायम मन से और दिलावर दिल से मनाएँ और उसकी नाराजगी को मिटायें। हो सकता है रुठने वाला छोटा हो पर मनाने वाला सदा बड़ा ही रहेगा। जैसे मोती की माला जितनी भी बार टूटती है तो उन मूल्यवान मोतियों को झुक-झुककर समेटा जा सकता है; बार-बार गिना जाता है कि कोई कम न हो और फिर सावधानी से उन मोतियों को प्रेम-धागे में पिरोया जाता है।

गौतम बुद्ध के जीवन-काल की एक घटना है। एक बार गौतम बुद्ध विहार करते हुए किसी छोटे से गांव में पहुँचे। शाम के समय जब धर्मसभा समाप्त हुई उस समय एक ग्रामीण व्यक्ति उत्तेजना में दौडता हुआ आया और गौतम बुद्ध के शरीर पर थूँक कर चला गया। बुद्ध ने सहज-स्वाभाविकता से अपनी चादर को उठाया और समताभाव से पोंछ लिया।

यह देखकर सारे शिष्यगण नाराज हो गए। उनके प्रमुख शिष्य ने कहा- "तथागत ! यह तो हद हो गई। क्षमा का अर्थ यह तो नहीं है कि हम अकारण अपमान बर्दाश्त करें। इस तरह चुप्पी साध लेने से तो अपराधी के अपराधों को प्रोत्साहन मिलता जायेगा। आपको तो उसे उचित दंड देना चाहिए।"

तथागत ने मुस्कराते हुए कहा- "वत्स ! उत्तेजित मत बनो, क्षमा को धारण करो। मैने पूर्व जन्म में कभी उस व्यक्ति को दु:ख दिया होगा या अपमानित किया होगा तो अच्छा हुआ कि आज उसका निपटारा हो गया। मैं तो उसे हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि उसने आज हिसाब पूरा करके मुझे

मुक्त कर दिया। मैंने तो क्षमा भाव रखकर अपनी कर्म श्रृंखला को तोड़ा और तुम उत्तेजना से कर्म श्रंखला से बंध रहे हो। अच्छा यह है कि क्षमा और मैत्री भाव रखकर शांत और प्रसन्न रहना सीखो।"

आज के युग में मनुष्य की क्षमा खोखली, झूठी और औपचारिक बन कर रह गई है। इस औपचारिकता ने सम्बन्धों को खोखला, व्यक्तित्व को झूठा और मनुष्य को बड़ा चालबाज बना दिया है। कभी-कभी आदमी आकाश के तारों को पकड़ने के लिए दूर-दूर तक हाथ फैलाता है पर अपने ही कदमो के समक्ष कुछ दूरी पर उगे हुए फूलों को देखना व सूंघना भूल जाता है। यूँ तो जीवन में अन्य लोगों के साथ गलतफहमी या मनमुटाव के प्रसंग कम ही उपस्थित होते है परन्तु जो अपने आत्मीय जन हैं या जो सदा निकट रहते हैं उनके साथ छोटी–छोटी बातों में, मामूली से व्यवहार मे कभी-कभी तनाव पैदा हो जाता है। जिन आत्मीय व पारिवारिक सदस्यों के साथ हमारा आपसी व्यवहार शुष्क हो गया हो उनसे क्षमा मांगना और उन्हें दिल से क्षमा देना सच्ची क्षमा है। सिर्फ दूर-दूर के रिश्तों में, हल्की सी जान-पहचान मे या जिनसे मधुर सबंध चल रहे हों उनसे क्षमा की लेन-देन करके हम स्वय को धोखा देते है। रामचरित उपाध्याय ने भी उत्तम क्षमा की आराधना को दो पंक्तियों मे बताया है-

क्षमा से कमालो गंवाए हुए को ।
क्षमा से हंसालो रुलाये हुए को ।।